

बी.ए. (प्रोग्राम)

सेमेस्टर-II

हिन्दी

DISCIPLINE SPECIFIC CORE COURSE

हिन्दी कविता—मध्यकाल और आधुनिक काल

अध्ययन-सामग्री : इकाई (1-4)



मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी-विभाग

DISCIPLINE SPECIFIC CORE COURSE

हिन्दी कविता : मध्यकाल और आधुनिक काल

अध्ययन-सामग्री : इकाई (1-4)

- इकाई-1 : (1) कबीर के दोहे : कबीर दास –डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
(2) गोकुल लीला : सूरदास –डॉ. भवानी दास
(3) दोहावली छंद : तुलसीदास –डॉ. प्रेमलता भसीन
- इकाई-2 : (1) दोहे : बिहारी –डॉ. दिनेश गुप्ता
(2) कवित्त : घनानंद –डॉ. सुधीर शर्मा
- इकाई-3 : (1) रईसों के सपूत : मैथिलीशरण गुप्त –डॉ. भवानी दास
(2) बीती विभावरी जागरी : जयशंकर प्रसाद –डॉ. भवानी दास
- इकाई-4 : (1) जो बीत गई सो बात गई : हरिवंशराय बच्चन –डॉ. भवानी दास
(2) उनको प्रणाम : नागार्जुन –डॉ. सीमा जैन
(3) गीत-फरोश : भवानीप्रसाद मिश्र –डॉ. मीनाक्षी व्यास

सम्पादक :

हिन्दी विभाग



मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

5, कैवेलरी लेन, दिल्ली-110007

1. कबीर के दोहे : कबीर दास

—डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

मुक्त शिक्षा विद्यालय

प्रस्तावना

कबीर भक्तिकालीन संत काव्यधारा के आधार स्तम्भ हैं। वे ऐसे युग में उत्पन्न हुए जो राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टियों से न केवल अव्यवस्थित था बल्कि अनेकानेक विकृतियों, अन्तर्विरोधों, अंधविश्वासों, विडम्बनाओं आदि से ग्रस्त था। ऐसे समय में भारतीय जनता की अन्तर्निहित शक्ति और अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न कबीर का प्रादुर्भाव अंधकार के जन्मजात शत्रु सूर्य की तरह हुआ। अपने स्वानुभव, सहज प्रतिभा एवं जन-चेतना के सहयोग से उन्होंने ऐसी पंक्तियाँ कह डालीं जिनमें से अधिकांश आज भी उतनी ही प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण हैं जितनी मध्यकाल में रही होंगी। उन्होंने उपासना का ऐसा मार्ग चलाया जो हिन्दू और मुसलमान दोनों के आडंबर एवं अंधविश्वासपूर्ण, तर्कहीन मान्यताओं का खंडन करता था और उन्हें प्रेम और साधना के सीधे-सच्चे मार्ग पर ले जाना चाहता था। अपने भावों, विचारों एवं सिद्धांतों के प्रचार के लिए कबीर ने जनता की ही सरल, सुबोध, व्यंजक भाषा को अपना माध्यम बनाया, उनका काव्य आज भी विचारोत्तेजक एवं प्रेरणादायक है।

अधिगम का उद्देश्य

पाठ्यक्रम में निर्धारित उनके काव्यांश का अध्ययन करने से पहले उनके जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में कुछ बातें जान लेना उपयुक्त रहेगा।

कवि-परिचय—कबीरदास के जन्म और मृत्यु की तिथियाँ तथा जीवन की घटनाएँ अनिश्चित हैं। कबीरपन्थियों तथा जनसाधारण ने कबीर के जीवन के साथ कुछ ऐसी रहस्यपूर्ण, चमत्कारमयी तथा अलौकिक घटनाएँ जोड़ दी हैं, जिनकी सत्यता का पता लगाना कठिन है। कबीर-पंथ के ग्रन्थों तथा अन्य इतिहासकारों के अनुसार कबीर का जन्म सं. 1455 (ई. स. 1398) और निधन सं. 1551 (ई. स. 1494) में हुआ। उनका जन्म-स्थान काशी और मृत्यु-स्थान मगहर कहा जाता है। उनकी जाति और माता-पिता के विषय में भी विविध जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कबीर ने अपने ग्रन्थों में विभिन्न स्थलों पर अपने को 'जाति जुलाहा नाम कबीरा' कहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि कबीर के माता-पिता जुलाहा जाति के थे और यह जाति नाथपंथी योगियों की शिष्य थी। इस जाति ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, पर नाथपंथी योगियों के संस्कार इस जाति में अभी तक बने हुए थे।

कहा जाता है कि कबीर गुरु रामानन्द के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी से उत्पन्न हुए थे। उसने लोक-लाज के कारण उन्हें लहरतारा नामक तालाब के किनारे छोड़ दिया। वे नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति को मिले। उन्होंने उनका पालन-पोषण किया। परन्तु कबीरदास की रचनाओं और परवर्ती इतिहासकारों

के अनुसार यह बात निराधार सिद्ध हो जाती है। अन्य प्रामाणिक मत के अभाव में नीरू और नीमा ही पालन-पोषण करने वाले माता-पिता माने जाते हैं। कबीरदास ने किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं पाई थी, वरन् साधु-संगति और अनुभव जन्य ज्ञान प्राप्त किया था। तभी तो वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कहते हैं—‘मैं कहता आँखनि की देखी, तू कहता कागद की लेखी’ तथा ‘मसि कागद छुऔ नहीं, कलम गही नहीं हाथ’। नियमित रूप से शिक्षा न मिलने पर भी कबीरदास ने सत्संग से ज्ञानार्जन किया था। गुरु रामानन्द की कृपा से सब ज्ञान उनके लिए सुलभ हो गया था। कबीर दास ने सम्भवतः अत्यधिक श्रद्धा और आदर के कारण अपने गुरु का नामोल्लेख नहीं किया है परन्तु विद्वानों की धारणा है कि रामानन्द उनके गुरु थे। डॉ. रामकुमार वर्मा, श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वान इस सम्भावना का समर्थन करते हैं। इस बारे में एक दोहा बहुत प्रचलित है—

भक्त द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।

कबीरदास परगट किया, सत्त दीप नव खण्ड।।

कबीर के परिवार के विषय में भी मतभेद है। अनुमान किया जाता है कि उनका लोई नामक स्त्री से विवाह हुआ था, जिससे कमाल नामक पुत्र उत्पन्न हुए। ‘बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल’ लोकोक्ति तो अभी तक प्रचलित है।

कबीरदास का व्यवसाय कपड़ा बुनना था। परन्तु अपने व्यवसाय के प्रति रुचि न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। कबीरदास ने अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व की अवहेलना नहीं की, वरन् ‘यथा-लाभ-संतोष’ की वृत्ति से अन्त समय तक अपना कार्य करते हुए वह एक सादा जीवन व्यतीत करते रहे।

अन्य महात्माओं की तरह कबीर के विषय में भी कई आश्चर्य कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनसे उनमें लोकोत्तर शक्तियों का होना सिद्ध किया जाता है।

साहित्यिक-व्यक्तित्व—मध्यकालीन निर्गुण सन्तों में कबीर का अन्यतम स्थान है। निर्भिकता और सत्यवादिता कबीर के चरित्र के मूल तत्त्व कहे जा सकते हैं। कबीर की साखियों को पढ़कर आप भी यह स्वीकार करेंगे कि आरम्भ से अन्त तक वह क्रांतिकारी रहे। क्रमिक सुधार और क्रमिक परिवर्तन का मार्ग उन्हें प्रिय था। कुरीतियों और कुसंस्कारों के प्रति लेशमात्र की पक्षपात उन्हें असह्य था। सत्य के इस जिज्ञासु को मोह और ममता अपने पथ से विचलित नहीं कर पायी। सत्य की इस खोज में वह अपना सब कुछ जलाकर निकल पड़े थे और ऐसा ही साथी चाहते थे जिसे ‘स्व’ की चिन्ता न हो—

‘हम घर जारा अपना, लिया मुराड़ा।

अब घर जारौं तासका, जो चले हमारे साथ।।’

कबीरदास में एक प्रकार की अक्खड़ता मिलती है। यह अक्खड़ता उन्हें योगियों से उत्तराधिकार में मिली थी।

कबीर में अखंड आत्मनिष्ठा, दृढ़ता और लापरवाही मिलती है। उन्होंने साधना को एक रणस्थली के समान कठिन और विकट माना है, इसी कारण भक्त की उपमा उन्होंने पतिव्रता और शूर से दी है। महत्ब्रह्म की साधना में आत्म-त्याग की आवश्यकता होती है। अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की प्रवृत्ति इस क्षेत्र में प्रवेश की पहली शर्त है। कबीर की दृष्टि में साधना एवं भक्ति के लिए प्रेम आवश्यक है किंतु प्रेम का मार्ग अत्यंत कठिन है—

‘कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।’

‘सीस उतारै भुइं धरै सो पैठे घर माहिं।।’

कबीर एक युग-प्रवर्तक सन्त थे। उनकी कथनी और करनी-वाणी और कर्म में साम्य था। वह जो कुछ कहते थे, उनके मूल में उनका अनुभव और आत्म-विश्वास था। उनमें अपने सिद्धान्तों और सत्य के प्रति पूरी ईमानदारी थी, इसी कारण उनकी उक्तियाँ इतनी चुभने वाली हैं मानव मात्र को समान समझने वाले कबीरदास ऊँच-नीच के भेद, ब्राह्म्याचार तथा झूठे दिखावे को सह नहीं सके। ऐसे पाखंडियों का खण्डन उन्होंने कटु व्यंग्य के साथ किया है। पण्डित और मुल्ला, शोख और साधु किसी के साथ उन्होंने पक्षपात नहीं किया।

सारग्राही कबीरदास के इस विलक्षण स्वभाव के विषय में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन ध्यान देने योग्य है—“कबीर युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युगप्रवर्तक की दृढ़ता उनमें विद्यमान थी, इसीलिए वह युग-प्रवर्तन कर सके थे।” कबीर सिर से पैर तक मस्तमौला थे—बेपरवाह, दृढ़, उग्र कुसुम से भी कोमल, वज्र से भी कठोर। वास्तव में कबीरदास एक निर्गुण सन्त थे। उनके व्यक्तित्व में समाज सुधारक, धार्मिक नेता, भक्त सभी का समन्वय है।

विचारधारा

कबीर शास्त्रों के ज्ञाता थे। उनकी यह मान्यता भी थी कि वेद, शास्त्र, कुरान आदि परम्परागत धार्मिक ग्रन्थ, व्यर्थ और त्याज्य हैं। अतः सारसंग्रही दृष्टि से विभिन्न मतों ओर सम्प्रदायों में से मूल बातों को लेकर कबीरदास ने अपनी मौलिक प्रतिभा से सन्त मत को शक्ति-सम्पन्न बनाया। उपनिषदों के अद्वैतवाद, सूफी सन्तों की प्रेममयी रहस्य-भावना, वैष्णवों के अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद (शरण-अनुग्रह पाने की कामना), इस्लाम के एकेश्वरवाद, सिद्ध और नाथ साधकों की विचारधारा-सभी धार्मिक मतों के तत्त्व कबीर की रचनाओं में मिलते हैं।

धार्मिक एवं सामाजिक विचारधारा—कबीर भक्त और कवि होने के अतिरिक्त समाज सुधारक भी थे। समाज की कमजोरी, उसकी विषमता को कबीरदास ने पहचाना और अपनी पूरी ईमानदारी के साथ उसे दूर करने का प्रयास किया। समाज के अन्तर्गत किसी प्रकार की जातिगत भेदभाव कबीर को मान्य न था। समाज में प्रचलित रूढ़ियों और मिथ्याडम्बरों की उन्होंने कटु आलोचना की। उस समय का धर्म बाह्याचारों और कुसंस्कारों से जकड़ा हुआ था। उन्होंने धर्म के बाहरी विधि-विधान (जप, माला, छापा, हज, तिलक, रोजा, नमाज आदि) का विरोध किया। व्यक्तिगत पवित्रता और आचरण को महत्त्व देते हुए भी कबीर की साधना-पद्धति समाज की उपेक्षा नहीं करती। उन्होंने समाज से दूर हटकर जप-तप को प्रशंसनीय नहीं माना। प्रवृत्ति (लगाव) और निवृत्ति (वैराग्य) दोनों का मध्य मार्ग ही उन्होंने चुना।

आज के समाज को देखते हुए आप मध्यकालीन समाज की कल्पना करें कि किस प्रकार तत्कालीन समाज में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बाहरी आचारों में विश्वास रखते थे। हिन्दू माला, तिलक, तीर्थ-स्थान आदि के पक्षपाती थे, तो मुसलमान रोजा, नमाज और अजान के। कबीर ने पूरी दृढ़ता के साथ कटु-व्यंग्य करते हुए दोनों को सचेत करने और सत्य का ज्ञान कराने का प्रयास किया है। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों में प्रचलित आडम्बरों-मूर्ति-पूजा, छुआ-छूत, तीर्थस्थान तथा हज्ज, अजान आदि का घोर विरोध किया, क्योंकि कबीर का यह दृढ़ मत था कि ये धर्म की ऊपरी बातें हिन्दू और मुसलमान को आपस में लड़ाने वाली हैं।

प्राणिमात्र की एकता और समता का संदेश सुनाने वाले कबीर ने अहिंसा को आदर्श बताया। बाह्याडम्बरों को त्यागकर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मनोविकारों के दमन को व्यक्तिगत आचरण और शुद्धता का आधार बताया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों दोनों को एकता और बन्धुत्व का संदेश देकर सांस्कृतिक एकता स्थापन का प्रयत्न किया।

दार्शनिक विचारधारा—कबीरदास मूलतः भक्त थे, दार्शनिक नहीं। ब्रह्म, जीव, माया सम्बन्धी उनके सिद्धान्तों को दार्शनिक माना जा सकता है। कबीर ने ब्रह्म को सर्वशक्तिमान माना। यह ब्रह्म रूप-रेखा, आकार, भाव-अभाव से परे है। उसे कबीरदास ने द्वैत (ब्रह्म-माया) और अद्वैत (केवल ब्रह्म) दोनों से विलक्षण माना। इसे केवल अनुभव और साधना से ही जाना और पाया जा सकता है। यही ब्रह्म कबीर का उपास्य है, जिसे उन्होंने 'राम' नाम से पुकारा है। परन्तु उनके राम दशरथ-सुत न होकर निर्गुण और निराकार है। उन्होंने स्पष्ट कहा है—

“दशरथ सुत तिहं लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।”

सामान्यतः कबीर ने ब्रह्म और जीव का अद्वैत (एकत्व) माना है। जीव ब्रह्म का ही अंश है और उसी में लीन हो जाता है। उसके इस मिलन में माया का बाहरी आवरण ही बाधक है। जीव और ब्रह्म एक हैं पर माया के कारण जीव सत्य को जान नहीं पाता। सद्गुरु उसे मार्ग दिखाता है। इसी कारण कबीर-मत में गुरु का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। गोविन्द (ब्रह्म) से मिलन में सहायक होने के कारण गुरु गोविन्द से भी अधिक आदर का पात्र माना गया है

“गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागू पाएँ।

बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविन्द दियौ मिलाय।”

कबीर के अनुसार यह ब्रह्म निर्गुण और निराकार है, जीव इसका अभिन्न अंश है, परन्तु भक्त उपासना-भक्ति के लिए ब्रह्म को द्वैत रूप में अर्थात् अपने से भिन्न मानकर उससे विविध सम्बन्ध स्थापित करता है। कबीर अपने उपास्य को सर्वशक्तिमान् ऐश्वर्यशाली मानकर कभी उसे 'स्वामी या साहेब' मानते हैं और कभी उसकी स्नेहशीलता, वात्सल्य-भावना को दृष्टि में रखकर माता के रूप में सम्बोधित करते हैं, यथा—

‘हरि जननी मैं बालक तोरा।’

कबीर ब्रह्म को कभी पिता के रूप में देखते हैं कभी पति के रूप में। उनके काव्य में अनेक स्थलों पर ब्रह्म प्रियतम रूप में उपस्थित है। कबीर अपने को पत्नी मानते हैं, ब्रह्म को पति। इस तरह की दाम्पत्य-भाव की भक्ति कबीर की साधना की विशेषता है। कबीर की इस प्रेम-भावना पर सूफियों का प्रभाव

है—परन्तु कबीरदास फारसी परम्परा के अनुसार ब्रह्म को “माशूका” या प्रियतमा न मानकर भारतीय परम्परा के अनुसार पति या प्रेमी मानते हैं—

‘राम मेरे पीव मैं राम की बहुरिया।’

कबीर का रहस्यवाद—जीव को ब्रह्म में लीन हो जाने की चरम इच्छा होती है। उसका सम्पूर्ण जीवनकाल नैहर-निवास या विरह काल है। इसी कारण कबीर के काव्य में विरह-वेदना की आकुलता मिलती है। मृत्यु के पश्चात् आत्मा ब्रह्म में मिल जाती है। यह कबीर आदि सन्तों की पारिभाषिक पदावली में ‘आध्यात्मिक विवाह’ है। ब्रह्म के संबंध का चिन्तन, उसकी प्रेम-भक्ति की रहस्यवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार कबीर के रहस्यवाद में चिंतन (अद्वैतवाद), साधना (हठयोग, योगाभ्यास) तथा भावना (प्रोम-भक्ति) का समन्वय है। उनकी दृष्टि में सारी सृष्टि में ब्रह्म समाया हुआ है। ब्रह्म से रहित कोई भी पदार्थ नहीं है। कवि जब ब्रह्म के प्रकाश को देखने निकलता है, उसे सर्वत्र ही ब्रह्म वेग प्रकाश दीखता है—

‘लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।’

कबीर के अनुसार ब्रह्म अविनाशी है, जीव उसी का अंश है। माया आकर्षक रूप बनाकर ब्रह्म और जीव के मिलन में बाधक होती है, अतः माया त्याज्य है। यह दिखाई पड़ने वाला संसार नश्वर है। ब्रह्मा की भक्ति और सत्कर्म ही जीव का उद्धार कर सकते हैं।

रचनाएँ

कबीरदास ने पोथियाँ नहीं पढ़ी थीं पुस्तकों के ज्ञान को वह व्यर्थ का भार मानते थे। ऐसा कोई प्रमाण नहीं, कि उन्होंने कोई ग्रंथ लिखा। उनके शिष्यों ने उनकी वाणियों का संग्रह किया था। उनकी रचनाएँ फुटकर शब्दों साखियों, रमैणियों व पदों के संग्रह के रूप में मिलती हैं। गेय होने के कारण उनकी रचनाओं के रूपों में बराबर परिवर्तन होता रहा है। अन्य व्यक्तियों द्वारा उनके अनुकरण में वैसी ही रचनाएँ लिखने के कारण अनेक रचना-संग्रहों में ऐसी रचनाओं का भी समावेश हो गया है, जो उनकी नहीं है और जिन्हें पृथक करना कठिन है। ऐसा प्रसिद्ध है कि कबीरदास के शिष्य धर्मदास ने ‘बीजक’ के रूप में उनकी रचनाओं का संग्रह किया, किन्तु इनकी भाषा के आधार पर इसे पूर्ण प्रामाणिक नहीं माना जाता। कबीर द्वारा रचित पुस्तकों की संख्या 60 के ऊपर मानी गई है, परन्तु इनमें से अधिकांश संदिग्ध है। कबीर के नाम से प्रचलित पदों की मौखिक परंपराओं में निम्नलिखित तीन अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक हैं—

राजथानी परम्परा—इस परम्परा में दादू पंथी, निरंजनी आदि शाखाएँ आती हैं। आचार्य श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित ‘कबीर ग्रन्थावली’ का संबंध इसी परम्परा से है।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब की परम्परा—सिक्खों के ‘आदि ग्रन्थ’ में संग्रहित कबीर के पद इसमें आते हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित ‘सन्त कबीर’ में ये प्रकाशित हुए हैं।

बीजक की परंपरा—कबीर पंथियों की इस परम्परा में ‘बीजक’ अत्यन्त मान्य और ‘परम पूज्य धर्मग्रन्थ’ हैं। कबीर ने सब मिलाकर कितना कहा, यह कहना कठिन है। कबीर-पथ वालों के अनुसार कबीर ने छः लाख चौरासी हजार शब्दों की रचना की। डॉ. पारसनाथ तिवारी के अनुसार 744 साखियाँ, 200 पद

और 21 रमैणियाँ कबीर की हैं। इस पर विद्वानों में मतभेद है। रचना के परिमाण के विषय में विवाद भले ही हो, परन्तु उनके महत्त्व को सभी ने स्वीकार किया है।

साखी, पद और रमैणी

‘साखी’ शब्द ‘साक्षी’ का अपभ्रंश रूप है। इस रूप में यह शब्द उस ज्ञान, उस अनुभूति का द्योतक है, जिसे कवि ने अपनी बुद्धि से नहीं, वरण अपने अंतःकरण से साक्षात्कृत किया है। साखी में प्रतिभा, प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा अनुभूति विद्यमान है। ये साखियाँ उस ज्ञान की ‘साक्षी’ भी हैं और उसका साक्षात्कार करानेवाली भी हैं। ‘साखी’ शब्द में ‘शिक्षा’ या ‘सीख’ अर्थात् उपदेश का अर्थ भी निहित है। कबीर ने साखियों की रचना भवसागर में डूबते लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान का साक्षात्कार कराने के लिए ही की थी, जैसा कि उनकी इन पंक्तियों से स्पष्ट है—

हरि जी यहै विचारिया, साखी कहौ कबीर।

भौ सागर में जीव है, जो कोई पकडै तीर।।

साखियों में नैतिक उपदेश का भी समावेश मिलता है। छंद की दृष्टि से ‘साखी’ दोहा के निकट है। अधिकांश साखी सामान्यतः दोहा छंद में ही रचित है। कबीर ने अपनी साखियों में गुरु का महत्त्व, सुमिरण-मनन की अवस्था, जीवात्मा का विरह, संसार की नश्वरता के प्रति चेतावनी, ईश्वर तत्त्व की प्राप्ति में माया की बाधकता, सहज समाधि, साधु-संगति, कुसंगति, गुरु का शब्दोपदेश (सबद), निन्दा, पतिव्रता नारी आदि विषयों को लिया है।

कबीर ने पदों की रचना भी की है, जिनकी संख्या 21 है। ये रमैणियाँ, एक पदी, दो पदी, चौपादी, सप्तपदी, अष्टपदी और बारहपदी हैं। इनमें धार्मिक ब्राह्मचारों और आचारिक असंगतियों पर तीखे कटाक्ष किये गये हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से आपको स्पष्ट हो गया होगा कि कबीरदास सरल हृदय भक्त थे। उन्होंने अपने को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य-रचना की। इसी कारण पिंगल (छंद शास्त्र) आदि काव्य के बाह्य उपकरणों की उपेक्षा हुई। भावों एवं विचारों की मार्मिक अभिव्यंजना के कारण उनका काव्य प्रभावशाली एवं विचारोत्तेजक बन पड़ा है। डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में “यद्यपि कबीर ने पिंगल और अलंकार शास्त्र के आधार पर कविता नहीं की तथापि उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कृष्ट थी कि वे सरलता से महाकवि कहे जा सकते हैं। कविता में छंद और अलंकार गौण है, संदेश प्रधान है। कबीर ने अपनी कविता में महान् संदेश दिया है। उस संदेश के प्रकट करने का ढंग अलंकार से युक्त न होते हुए भी काव्यम है।”

कबीर के काव्य का विचार पक्ष अत्यंत पुष्ट है। उनके काव्य का मेरुदण्ड (आधार) उनका बुद्धितत्त्व या चिंतन है। उनके काव्य में विचारों की अभिव्यक्ति अत्यंत सफलता से हुई है। उनके पदों में भाव-व्यंजना की गहराई विद्यमान है। विशेषकर विरह-पीड़ा के पदों में भावों की तीव्रता और अनुभूति की सघनता अद्वितीय है। कबीर को कुशल कलाकार नहीं कहा जा सकता, उन्होंने इसकी अपेक्षा भी नहीं की। उन्हें मानवता को महान् संदेश देना था। वह संदेश जनता तक पहुँचाने की पूरी शक्ति उनके काव्य में है। कबीर के काव्य में लोक-जीवन की अभिव्यक्ति के अनुरूप शब्द-शक्तियाँ, अलंकार, गुण, छंद आदि मिलते

हैं। उन्होंने अपने कथन को सुग्राह्य बनाने के लिए लोक-जीवन, विशेषकर कृषक और जुलाहे के जीवन के प्रतीकात्मक शब्द ग्रहण किये।

कबीर की कुछ साखियों और पदों में शांतरस है। उलटबाँसियों में अद्भुत रस है। शेष पदों में भक्ति-विषयक शृंगार रस प्रधान है। उनका शृंगार प्रभाव-तीव्रता रखते हुए भी आध्यात्मिक है। उपदेश संबंधी कथन के लिए कबीर ने साखी का व्यवहार किया है। गूढ़ अनुभूति के प्रकाशन के लिए पद और रमैणी का प्रयोग हुआ है। ब्रह्म संबंधी अपनी अनुभूति के प्रकाशन के लिए कबीर ने उलटबाँसियों का प्रयोग किया है। इन उलटबाँसियों में प्रकृति विरुद्ध सत्यों का कथन कर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया गया है।

काव्य को प्रभावशाली बनाने वाले कुछ अलंकार भी कबीर के काव्य में अनायास आ गये हैं। उनके काव्य में सांग-रूपक का प्रयोग अधिक मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्योक्ति, उदाहरण, दृष्टांत, उपमा, विरोधाभास, विभावना आदि अलंकार भी मिलते हैं। ये अलंकार काव्य की शोभा को बढ़ाने के लिए चेष्टापूर्वक नहीं लाये गये हैं बल्कि वाणी के सहज प्रवाह में अपने आप आ गये हैं।

कबीरदास ने काव्य-रचना पांडित्य-प्रदर्शन की भावना से नहीं की, अपितु जन-सामान्य की भाषा में जन-साधारण तक अपने विचारों को पहुँचाने की दृष्टि से की। अपने सिद्धांतों के प्रचार और सत्संग के लिए कबीर विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया करते थे, अतः उनकी भाषा में भोजपुरी, ब्रज, अवधी, खड़ी-बोली, राजस्थानी आदि का मिश्रित रूप मिलता है। इसीलिए उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा जाता है।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे-उन्होंने स्वयं कहा है-'विद्या न पढ़ौं बाद हिं जानौं।' परन्तु उनके काव्य में सत्यनिष्ठा का तेज, दृढ़ विश्वास का बल और सरल-हृदयता का सौंदर्य विद्यमान है।

कबीर का महत्त्व और हिन्दी साहित्य में उनका योगदान

कबीर सहज चिंतक, भावुक भक्त, कवि और संत होने के साथ ही बिखरे समाज को संगठित करने वाले लोकनायक भी हैं। अपनी मौलिक प्रतिभा, तेजस्वित और तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर उन्होंने कुसंस्कारों के जंजाल को दूर कर समाज के सुधार और पुनर्निर्माण की चेष्टा की। तत्कालीन युग विश्रंखलता और अव्यवस्था का युग था। हर्ष की मृत्यु के बाद भारतीय समाज का पतन आरम्भ हुआ और कबीर के समय तक राजनीतिक पराभव, धार्मिक असहिष्णुता और सामाजिक विश्रंखलता बहुत अधिक बढ़ चुकी थी।

कबीरदास युगद्रष्टा महात्मा थे। उन्होंने देखा कि भेद-नीति तथा बाह्याचारों की अधिकता हिन्दू-मुस्लिम एकता में बाधक है। दोनों एक ईश्वर के उपासक हैं, अन्तर इतना ही है कि हिन्दू ईश्वर को राम और मुसलमान उसे रहीम कहते हैं। इस तत्त्व को न समझने के कारण ही दोनों लड़ते हैं। कबीर ने सभी को एक ही ईश्वर की सन्तान बताया और उनके अंधविश्वास को दूर किया-'कोई हिन्दू, कोई तुरुक-कहावै, एक जमीं पर रहिए।' हिन्दू मुस्लिम एकता का संदेश सबसे पहले कबीर ने ही दिया।

कबीर ने बाह्याचारों एवं विधि विधानों की जटिलता से रहित उपासना के उस सरल मार्ग का प्रवर्तन किया, जिस पर चलने के लिए किसी विशेष जाति या वर्ग का सदस्य होना आवश्यक नहीं। हृदय में भक्ति-भावना और आचरण की शुद्धता रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसे अपना सकता है।

कबीर से पहले भी युगदर्शी महात्मा हुए थे; परन्तु उनमें से किसी में पूरी तीव्रता के साथ जाति-पाँति तथा बाह्याचारों का खंडन कर समाज के मार्ग-प्रदर्शन का साहस नहीं था। कबीर के इसी प्रभावशाली व्यक्तित्व को दृष्टि में रखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है—‘हिन्दी साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में वह व्यक्तित्व एक ही प्रतिद्वन्दी जानता है—तुलसीदास।’

कबीर-साहित्य में सर्व-धर्म समन्वय के तत्त्व मिल जाते हैं। उनमें अपने सिद्धान्तों के प्रति अविचल निष्ठा और दृढ़ता थी। वे उन व्यक्तियों में से एक थे, जो कठिन परिस्थितियों से न तो टूटते हैं और न उनके सामने झुकते हैं। आचार्य द्विवेदी के अनुसार कबीर के काव्य में समाज-सुधार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, सर्व-धर्म-समन्वय के तत्त्व मिल जाते हैं, परन्तु वे मूलतः भक्त थे। इसी कारण कबीर ने अपने उपदेशों को किसी पर जबरदस्ती लादने का प्रयास नहीं किया। कबीर के काव्य ने तत्कालीन धार्मिक अव्यवस्था को दूर किया, धर्मांध शासकों के मद का शमन किया तथा मानवमात्र को समता का महान् संदेश दिया। यह संभव है कि काव्यमयता ढूँढ़ने वाले कतिपय समीक्षकों को कबीर के काव्य में उच्चकोटि की साहित्यिकता न मिले परन्तु हृदय से निकली उनकी उक्तियों में असाधारण शक्ति और प्रभाव है।

कबीर की साखी

(साँच कौ अंग)

व्याख्या भाग

1. कबीर पूंजी साह की, तूँ जिनि खोवै ख्वार।
खरी बिगुचीन होइगी, लेखा देती बार।।।।।

शब्दार्थ : ख्वार = अपमानित। बिगुचिन = असमंजस। खरी = बहुत।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ कबीर द्वारा रचित हैं। यह उनकी रचना ‘कबीर-ग्रंथावली’ से अवतरित है। कबीर ने ‘साँच कौ अंग’ में ईश्वर की महिमा का गुणगान किया है। मानव निरंतर अपने अहंकार में जीवन जीता है, उसे केवल अपने सुखों के अलावा कुछ नहीं दिखाई नहीं देता है। कबीर ने इस दोहे के माध्यम से कहने चाहा है कि मानव के कर्मों के द्वारा ही फल की प्राप्ति होती है।

व्याख्या : हे मानव, ये जो तेरे पास ज्ञान का भंडार है। वह ईश्वरीय देन है। मानव तू इसे यूँ ही व्यर्थ न होने दे अर्थात् ईश्वर के पास जाने पर जीवन के हर कार्य का लेन-देन होगा तब वहाँ हर कार्य का हिसाब-किताब देना होगा।

- विशेष** :
1. इस दोहे में कबीर ने ईश्वर की महिमा का गुणगान किया है। मानव के अच्छे-बुरे कर्मों का लेखा-जोखा उसे यही पूरा करके जाना है।
 2. कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।
 3. ‘खोवै-ख्वार’ में अनुप्रास अलंकार है।

(भेष कौ अंग)

2. कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि॥5॥

शब्दार्थ : काठ = लकड़ी, ईधन। फिरावै = बदलना, परिवर्तित होना।

प्रसंग : कबीर ने इस दोहे में बाह्य आडंबरों का विरोध किया है। भगवान की भक्ति सच्चे मन से करनी चाहिए। व्यक्ति को अपने मन पर नियंत्रण रखना चाहिए तभी वह सब कुछ पा सकता है।

व्याख्या : कबीर काठ की माला के द्वारा व्यक्ति को यह समझना चाह रहे हैं कि माला को फिराने से कोई भी लाभ नहीं होगा, जब तक व्यक्ति का मन विषय वासनाओं में डूबा रहेगा अर्थात् तू मुझे फिराने के स्थान पर अपने मन को फिराकर प्रभु भक्ति में लगा।

- विशेष** : 1. मानव को अपने मन को काबू में रखना चाहिए। इसमें कबीर ने परिवर्तन पर अधिक बल दिया है।
2. 'मन न फिरावै आपणा कहाँ फिरावै' में यमक अलंकार है।

3. कबीर माला पहरयां कुछ नहीं, गांठि हिरदा कि खोइ।
हरि चरनों चित्त राखिये, तौ अमरापुर होइ॥9॥

शब्दार्थ : हिरदा = हृदय से। गाँठें = ग्रंथियां। अमरापुर = अमरलोक, अमरतत्व।

प्रसंग : कबीर मनुष्य को समझाते हैं कि जीवन में भक्ति का सुख प्राप्त करना है तो मन से विषय-विकारों का त्याग करना आवश्यक है। भक्ति-सुख से ही जीव अमरतत्व की प्राप्ति कर सकता है। कबीर ने माला और मूर्ति पूजा का खंडन किया है।

व्याख्या : कबीर कहते हैं—हे मनुष्य! माला पहनने से कुछ नहीं होता है, अपने मन में व्याप्त दूषित-ग्रंथि को नष्ट कर। जीव सांसारिक भोग में फँसा रहता है। मन से इन विकारों को नहीं निकाल पाता, जिसके कारण वह भटकता रहता है। व्यक्ति को मन से इन दुष्ट-विचारों को निकाल देना चाहिए अर्थात् श्री चरणों में ध्यान लगाने से ही अमरतत्व की प्राप्ति होगी।

- विशेष** : 1. कबीर ने इन पंक्तियों के द्वारा व्यक्ति के मन में व्याप्त दूषित विचारों को नष्ट कर, ईश्वर की भक्ति का रसपान करने से ही सारे सुखों की प्राप्ति होगी।
2. सरल, सहज और स्पष्ट भाषा का प्रयोग किया है।

4. कबीर केसौ कहा बिगाड़िया, जे मुंडै सौ बार।
मन कौं कहे न मुंडिए, जामैं विष विकार॥12॥

शब्दार्थ : बिगाड़िया = खराब करना, विकार पैदा करना। मुंडै = कटवाना। जामैं = पोशाक।
विष-विकार = मन में उत्पन्न भावना को बदलना।

व्याख्या : कबीर कहते हैं—हे मनुष्य! इन बालों ने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो तू इसे बार-बार कटवाते रहते हो। मन को क्यों नहीं समझाते हो अर्थात् परिवर्तित करते हो जिसमें विषय-तृष्णा भरी हुई है, उसको क्यों नहीं नष्ट करते। शरीर को ढँकने के लिए जामा पहनते हो, पर मन को साफ करने के लिए कोई यत्न नहीं करते।

- विशेष : 1. कबीर ने इस दोहे में व्यक्ति के मन में उत्पन्न विकारों को नष्ट करने के लिए कहा।
2. 'विष-विकार' में अनुप्रास अलंकार है।

(संम्रथाई कौ अंग)

5. कबीर सांइ सूं सब हॉट है, बदै थ कुछ नांहि।

राई थ परबत करै, परबत राई मांहि॥१२॥

शब्दार्थ : सांइ = भगवान, ईश्वर। बदै = मनुष्य, व्यक्ति।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि भगवान सभी कार्यों को करने में सक्षम है। मनुष्य सभी कार्य नहीं कर सकता है, अर्थात् व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। भगवान चाहे तो राई को पर्वत के आकार में बदल सकता है और पर्वत को राई के समान कर सकता है।

- विशेष : 1. कबीर ने इस दोहे में ईश्वर की शक्ति का वर्णन किया है।
2. 'राई ते परबत करै, परबत राई मांहि' में लोकोक्ति अलंकार का प्रयोग किया है।

2. गोकुल-लीला : सूरदास

—डॉ. भवानी दास

मुक्त शिक्षा विद्यालय

कवि-परिचय

सूरदास का जन्म सन् 1478 ई. में दिल्ली-मथुरा रोड़ पर स्थित सीही नाम ग्राम के एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। 18 वर्ष की आयु में इन्हें संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई और ये मथुरा-आगरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे। यहाँ वे लगभग 12 वर्ष तक रहे। इस बीच इनकी प्रसिद्धि फैल गई थी तथा अनेक व्यक्ति इनके शिष्य सेवक बन गये। गऊघाट पर रहते हुए इनकी भेंट पुष्टि सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य से हुई। उनकी वात्सल्य तथा सख्य-भाव की भक्ति-भावना से सूरदास इतने प्रभावित हुए कि पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो गए। इसके बाद सूरदास गऊघाट छोड़कर गोवर्द्धन आकर रहने लगे। गोवर्द्धन में प्रायः श्री नाथजी के मन्दिर में और कभी-कभी गोकुल में श्री नवनीत प्रियाजू के समक्ष पद बनाकर कीर्तन करते थे। उनका शेष समस्त जीवन भगवान की सेवा में व्यतीत हुआ। उनकी मृत्यु 1533 ई. के लगभग श्रीकृष्ण की रासभूमि पारसोली में महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र तथा उत्तराधिकारी विट्ठलनाथ जी के समक्ष हुई थी। इसका आँखों देखा-सा वर्णन 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में दिया गया है। एक दिन पूजन-कीर्तन के समय जब गोसाईं जी ने मणि-कोठा में सूरदास को कीर्तन करते सुना तो पूछताछ की। गोसाईं जी समझ गए कि आज सूरदास जी नश्वर शरीर छोड़कर नित्य शाश्वत वृन्दावनधाम (स्वर्ग) जा रहे हैं। पूजा पूर्ण करके वे शिष्य सेवकों सहित सूर के निवास-स्थान पर आये और आते ही पूछा कि तुम्हारे नेत्र की वृत्ति कहाँ है तो सूर ने यह पद गाया—

खंजन नैन रूप रस माते

अतिशय चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।...

इस पद की समाप्ति के साथ ही सूर ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

सूरदास जन्मांध होकर भी रूप को देखने की अद्भुत शक्ति रखते थे। भगवान के स्वरूप का जैसा शृंगार हो रहा होता था वैसा ही वर्णन कर देते थे। एक बार गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्रों ने सूर की परीक्षा लेने हेतु भगवान का शृंगार करते समय उन्हें वस्त्रहीन ही रहने दिया, केवल मोतियों की माला लटका दी। मन्दिर-द्वार खुलते ही सूरदास ने निम्न पद गाना आरम्भ किया—

देखे री हरिनंगमनंगा

'जलसुत भूषण अंग विराजत वसन छवि हीन उठत तरंगा।'

सूरदास की इस अद्भुत क्षमता को देखकर वे बहुत लज्जित हुए।

पद-रचना तथा संगीत की प्रतिभा भी इनमें लड़कपन से ही थी। सांसारिक विरक्ति के बाद ही इनमें भगवद् अनुरक्ति उत्पन्न हुई थी। अपने प्रारम्भिक जीवन में इन्होंने विनय और दीनता के पद गाए। श्री

वल्लभाचार्य जी के सम्पर्क में आने के बाद से श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का गान किया। इस तरह पुष्टिमार्गीय भक्ति-पद्धति ही इनके जीवन का आधार बन गई, इनकी कवि-प्रतिभा गुरु के आशीर्वाद से भक्ति-भावना के साथ एकाकार हो गई, जिससे यह कहना भी कठिन-सा प्रतीत होता है कि सूरदास पहले कवि हैं या भक्त? किन्तु इतना सच है कि इन्होंने अपनी सम्पूर्ण संगीत प्रतिभा को आराध्य कृष्ण के चरणों में लुटा दिया। भिन्न-भिन्न लीलाओं के प्रसंग लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यन्त मधुर और मनोहर पदों की झड़ी-सी बाँध दी है।

श्री विट्ठलनाथ जी ने अपने समय के प्रसिद्ध आठ संगीतज्ञों की जो मण्डली श्रीनाथ जी की आठों झाँकियों में समय और ऋतु के अनुसार कीर्ति के लिए गठित की थी, वह 'अष्टछाप' के नाम से प्रख्यात हुई। इनमें से सूरदास, परमानन्ददास और गोविन्दस्वामी सर्वाधिक प्रसिद्ध गायक थे। परन्तु इन तीनों में भी सूरदास की सेवा-भावना तथा काव्य-संगीत विषयक कुशलता के कारण अष्टछाप का प्रमुख भक्त एवं कवि माना गया है। अन्य कारण यह भी है कि इन्होंने भावुक कृष्णभक्तों तथा सहृदय काव्य-रसिकों दोनों को ही पूर्ण तुष्टि प्रदान की है।

सूरदास की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—1. सूरसागर, 2. सूर सारावली तथा 3. साहित्य लहरी। इनके अतिरिक्त भी लगभग एक दर्जन ग्रन्थों के नाम नागरी प्रचारणी सभा की खोज रिपोर्ट में मिलते हैं, जैसे व्याहलो, पदसंग्रह, दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत, सूर-पचीसी, गोवर्द्धन लीला, सूरसागर सार, राम जन्म, एकादशी महात्म्य आदि। इन ग्रन्थों में कुछ तो कदाचित महाकवि सूरदास की रचनाएँ नहीं हैं और सूरसागर की ही विशेष कथाओं अथवा लीलाओं से सम्बन्धित पदों के संग्रह मात्र हैं। इस प्रकार अधिकांश साहित्यिक इतिहासकारों द्वारा मान्य उपर्युक्त तीन रचनाएँ ही शेष रह जाती हैं। इन तीनों में से सर्वप्रमुख रचना 'सूरसागर' है। अन्य रचनाएँ अत्यन्त गौण हैं। 'सूरसारावली' भगवत-कथा को ही संक्षिप्त वर्णनात्मक रूप में प्रस्तुत करने वाली 1107 छन्दों की रचना है। 'साहित्य लहरी' 118 पदों का संग्रह है जिनमें अलंकार, नायिका या भाव का उल्लेख करके कूट शैली में उनके उदाहरण दिये गये हैं। अतएव महाकवि सूरदास की प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण रचना एकमात्र 'सूरसागर' ही रह जाती है।

द्वादशस्कंधी सूरदास के लगभग पाँच हजार पदों में से चार हजार से अधिक पद श्रीकृष्ण की ब्रजलीलाओं से संबंधित हैं तथा शेष एक हजार पदों में श्रीकृष्ण का द्वारिकाचरित, विनय पद, राम अवतार संबंधी पद तथा 22 अवतारों का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है। सूरसागर के दशमस्कंध में कृष्ण अवतार के ब्रजचरित तथा द्वारकाचरित वाले पद समूह की ही संख्या चार हजार तीन सौ नौ है। प्रथम स्कन्ध के विनयपद 343 हैं तथा नवम स्कंध के राम अवतार सम्बन्धी 174 पद पाए जाते हैं। विनय पदों में दास्य भाव तथा दैन्य भावना प्रधान है। बहुत सम्भव है, ये पद सूरदास ने गऊघाट पर रहते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने से पूर्व रचे हों। उनके परिवर्तित भक्ति-भाव में श्रीकृष्ण की बाल लीलाएँ हैं और माधुर्यभाव की भक्ति है, जिनमें कृष्ण और गोपियों की शृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन है। आकार और स्तर की दृष्टि से श्रीकृष्ण की ब्रजलीलाओं के गान में ही कवि की वास्तविक अभिरुचि थी। कृष्ण के जन्म से लेकर

नामकरण, कर्णछेदन, अन्नप्राशन आदि संस्कारों, बाल-क्रीड़ाओं, कालिय-दमन, दावानलपान, चीर हरण, गिरि-धारण, रास, पनघट, दान, मान आदि विविध लीलाओं, कंस द्वारा भेजे गए अन्यान्य राक्षसों का विनाश, गोचारण, गोवर्द्धन पूजा, वन-विहार, कृष्ण का मथुरा एवं द्वारिका गमन, कंस विनाश, श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र आगमन आदि का सविस्तर उल्लेख, दशमस्कन्ध में किया है। श्रीकृष्ण की इन लीलाओं का मूलाधार श्रीमद्भगवत का दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध है। इसने भक्तों के लिए माधुर्यभाव का मार्ग प्रशस्त किया।

साहित्यिक-परिचय

भाव-पक्ष

सूरदास के काव्य के तीन पक्ष हैं—विनय, बाल-लीला और शृंगार सम्बन्धी पद। विनय सम्बन्धी पदों में दास्य भाव की भक्ति मिलती है। वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व सूर द्वारा रचित विनय के पदों में आत्मदीनता, सांसारिक भोग-विलास में लिप्त जीवन की तुच्छता, संसार की तुच्छता, संसार की नश्वरता, हरि भजन का आग्रह, माया से सावधान रहने तथा ईश्वर-अनुकम्पा आदि का वर्णन है। गुरु-कृपा से सूर की यह आत्मदीनता समाप्त हो गई और वह श्रीकृष्ण के साकार सगुण रूप को भजने लगे। इस तरह उनकी भक्ति-भावना दास्यभक्ति से क्रमशः सख्य, वात्सल्य और माधुर्यभाव में उत्तरोत्तर विकसित हुई।

बाल लीला वर्णन में सूर काव्य का वास्तविक रूप देखने को मिलता है। बालक के मन में कोई भी ऐसी अन्तर्दशा और भावना शेष नहीं रही, जिसका अध्ययन इस नेत्रविहीन कवि ने न किया हो। उनका वात्सल्य-वर्णन विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार “जितने विस्तृत और विशद रूप में बाल्य जीवन का चित्रण इन्होंने किया है उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया।” वात्सल्य भाव को इस दशा तक पहुँचाने में सूर का कदाचित् हिन्दी कवियों में प्रथम स्थान है। आलंबन कृष्ण से उद्बुद्ध तथा उसकी शैशव-क्रीड़ाओं-चेष्टाओं के उद्दीपनों से उद्दीप्त नन्द-यशोदा के हृदय में वासना रूप से स्थित आश्रयगत वात्सल्य स्थायीभाव ही ‘मैया कबहिं बड़ेगी चोटी’ के स्पर्धी, ‘कत हो अरि करत मेरे मोहन यों तुम आँगन लोटी’ की बाल-चेष्टाओं ‘बलि गह रूप मुरारि’ जैसी नृत्य चेष्टाओं के अनुभवों में परिव्यक्त तथा संचारियाँ से पुष्ट होकर वत्सल रस दशा को प्राप्त हुआ है। सचमुच ‘आगे होने वाली कवियों की...वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी-सी जान पड़ती है।’

शृंगार चित्रण में शृंगार रस के संयोग और वियोग पक्षों का चित्रण है, किन्तु इस रस की बारीकी और गहराई में कवि की अद्भुत पैठ है। सूर-सागर का ‘भ्रमरगीत’ सगुण-निर्गुण वादों और कर्म, ज्ञान तथा भक्ति मार्गों के सिद्धान्तों के शास्त्रार्थ के साथ-साथ प्रौढ़ ध्वनि काव्य का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों का जितना उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं। वल्लभ सम्प्रदाय में वात्सल्यासक्ति और दाम्पत्यासक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया है, अतः स्वाभाविक ही था कि सूर उस ओर अधिक प्रवृत्त होते।

सूर के व्यापक विरह-वर्णन में ब्रज की प्रकृति, पशु-पक्षी, नन्द, यशोदा, ग्वाल-बाल, गोपियों और राधा सभी का विरह-वर्णन आ गया है। ऋतुएँ और संयोग सुख की स्थितियाँ भी दुःखदायी बन गई हैं।

हरे-हरे कुंज आग की लपटें बन जाती हैं, काली रात का चाँदनी से भर जाना उन्हें सर्पिणी के डस कर उलट जाने के समान लगता है, पपीहा कभी तो उन्हें 'प्रिय' की वाणी सुनाने के कारण प्रिय लगता है और कभी जले पर नमक छिड़कता है। चातक कुल की पीर का ध्यान रखने वाले बादलों के साथ जब वे निर्मोही कृष्ण की समानता पर विचार करती है तो उन्हें खीज उत्पन्न होती है। फलतः उन पर हमेशा पावस ऋतु बनी रहती है। गायें भी उन्हीं की तरह व्यग्र हैं और कृष्ण का नाम लेने पर रंभाने लगती हैं। सूर ने वियोग की प्रायः सभी दशाओं और संचारी भावों—अभिलाषा चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, जड़ता, मूर्च्छा और मरण के द्वारा शास्त्रीय ज्ञान का भी परिचय दिया है।

काव्य-सिद्धान्त की दृष्टि से सूर ने वल्लभाचार्य की दार्शनिक चिन्तन-धारा को काव्य का परिवेश दिया। वल्लभाचार्य ने कृष्णोपासना के पुष्टि-मार्ग का प्रवर्तन किया था। श्रीकृष्ण की अनुग्रह-प्राप्ति ही पुष्टि है—'अनुगृहीत पुष्टिः' अनुग्रह प्राप्ति के लिए आत्म निवेदन आवश्यक है। आत्म-निवेदन की अभिव्यंजना में ही गीतिकाव्य का उद्भव होता है। आराध्य की तुष्टि के लिए उसका लीला गान भी आवश्यक है। कृष्ण-लीला गान ही मुख्य प्रयोजन बना। लीलागान का स्वरूप बहुविध है। इसका उल्लेख लीला वर्णन में देखा जा सकता है। सूरदास का उद्देश्य भी लीला-गान रहा, अतः एक घटना को बार-बार गाने या बीच-बीच में अपनी आत्माभिव्यंजना निवेदित करने में उन्हें संकोच नहीं था। इस आत्म निवेदन की प्रधानता में उनका सूरसागर भी मुख्यतः गीति काव्य बन गया। सूरसागर को एक लड़ी में पिरोने का सूत्र कृष्ण चरित्र ही है, इसलिए इसे चरितात्मक गीति काव्य माना जा सकता है।

सूर की भक्ति प्रेमाभक्ति है, उसमें भी आसक्ति वैसी ही विद्यमान है, जैसी इस भक्ति के लिए अपेक्षित होती है—

'चकई री चलि चर सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग।
अब न सुहात विषय रस छीलर, वा समुद्र की आस।।
भृंगी री भजि स्याम कमल पद, जहाँ न निसि को त्रास।
सूरज प्रेम सिन्धु में प्रफुलित तहं चलि करे निवास।।'

सूर ने अन्य रसों को 'छीलर' और भक्ति रस को 'समुद्र' कहा है। प्रेम भक्ति में भगवान की अनुग्रह-प्राप्ति के लिए लोक-मर्यादा और वेद-मर्यादा का त्याग आवश्यक ठहराया गया है। इसी कारण सूर की गोपियाँ भी लोक-मर्यादा त्यागते समय किसी प्रकार का संकोच नहीं करतीं। सूर जैसे पुष्टि-जीव ने भले ही प्रेमाभक्ति का ग्रहण अध्यात्मिक धरातल पर किया हो, परन्तु काव्य-रसिकों में से प्रत्येक के लिए यह सम्भव न था। कदाचित् रीतिकाल का कृष्ण-काव्य इसी कारण प्रेमाभक्ति की अपेक्षा शृंगार प्रधान हो गया, जिसमें भक्ति तत्त्व 'बहाने भर' के लिए रह गया।

कलापक्ष

कलापक्ष की दृष्टि से सूर का काव्य अभिव्यंजना के सभी प्रसाधनों से अलंकृत है। चित्रण-कला में वे इतने प्रवीण हैं कि शब्दों के माध्यम से ही मनोहारी चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। कृष्ण की बाल लीलाओं,

रूप-छवि, मुरली, माधुरी आदि के नेत्र-श्रवणेन्द्रिय सुलभ बिम्ब प्रस्तुत किये गये हैं। सूर रूप-सौंदर्य के कवि हैं। कृष्ण के मोर-मुकुट, पीताम्बर धरी, मुरली मनोहर, मन मोहक स्वरूप का चित्रण वस्तुतः मन्त्र-मुग्ध सा करने वाला है। उधर राधा की श्री-शोभा पर कृष्ण तन-मन न्यौछावर किये हुए हैं। ऐसे चित्रण में अलंकार शास्त्र भी मानो हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ता प्रतीत होता है। रूपकों की वर्षा में उपमानों की बाढ़-सी आ जाती है और कवि स्वयं भी संगीत के प्रवाह में बह जाता है। ऐसी तल्लीनता के साथ काव्य-शास्त्रीय पद्धति की निर्वाह सचमुच विरल है। 'भ्रमरगीत' में 'वक्रोक्ति का पुट है। गोपियों की उक्तियों की छटा एवं उनके सहज, स्वाभाविक तर्क अत्यन्त निराले हैं, जो हृदय को बेध कर रख देते हैं। साधर्म्यमूलक अलंकार कवि के लिए केवल रसोत्कर्ष के साधन हैं। छन्द और संगीत का अद्भुत समन्वय सूरकाव्य की अन्यतम विशेषता है। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने 'सूरसागर' के वर्णनात्मक एवं गेय सभी अंशों का विश्लेषण कर प्रयुक्त छन्दों का उल्लेख किया है। इनमें चौपाई, रोला तथा इनसे निर्मित मिश्रित छन्द, रूपमाला, हरि गीतिका, सरसी, हरिपद, सार, लावनी, हीर, समान सवैया, मत्त सवैया आदि उल्लेखनीय हैं। सूर के सभी पदों में किसी-न-किसी राग की निबन्धना अवश्य हुई है। सूर के काव्य में ब्रजभाषा की तद्भव शब्दावली का आधिक्य है। उन्होंने बोलचाल की भाषा को ही साहित्यिकता प्रदान की है। इनकी भाषा में 'जाको', 'तासों', 'वाकों' जैसे बोलचाल के रूपों के समान 'जेहि', 'तेहि' आदि पुराने रूपों का प्रयोग बराबर मिलता है, 'गोड़े', 'आपन', 'हमार' आदि पूर्वी शब्दों का प्रयोग भी निःसंकोच किया गया है। इस तरह एक व्यापक काव्य भाषा का प्रयोग मिलता है, जो उनके काव्य में संप्रेषण की संभावनाओं को विस्तृत करता है। दूसरी ओर कृष्ण के सौंदर्य वर्णन के प्रसंगों में कवि ने परंपरागत शास्त्रीय ढंग के अलंकार-विधान का प्रयोग किया है। इसलिए उन प्रसंगों में पूर्व प्रचलित तत्सम शब्दावली का प्रयोग अधिक हुआ है लेकिन जहाँ बालकृष्ण और युवा कृष्ण की विविध लीलाओं के प्रसंग हैं वहाँ तत्सम शब्दावली की अपेक्षा तद्भव शब्दावली की प्रधानता मिलती है। ब्रजभाषा की ठेठ प्रकृति को दर्शाने वाली यह तद्भव शब्दावली अत्यंत सटीक है।

सूर काव्य की मौलिकता

कवि का प्रेरणा-स्रोत मूलतः श्रीमद्भागवतपुराण का पूर्वार्द्ध है। वे स्वयं ही इसका उल्लेख करते हैं।

“श्री मुख चारि श्लोक दए, ब्रह्म को समुझाइ।
 ब्रह्मा नारद सें कहे, नारद व्यास सुनाइ
 व्यास कहै सुकदेव सों द्वादस स्कन्ध बनाइ।
 सूरदास सोइ कहै पद भाषा करि गाइ।।”

किन्तु भागवतकार का लक्ष्य कथानक को आगे बढ़ाते हुए गोपियों की प्रणयानुभूतियों की व्यंजना करना तथा कृष्ण की व्यापकता सिद्ध करना रहा है, जबकि सूरदास गोपियों के विरह-वर्णन के साथ प्रेम-लक्षणा भक्ति के महत्त्व को भी प्रतिपादित करते हैं। जहाँ भागवतकार की गोपियाँ केवल कृष्ण की वंचकता को ही कोसती हैं, उद्धव के ज्ञानोपदेश की कोई निन्दा नहीं करती और अन्त में ज्ञान-चर्चा से

प्रभावित भी होती हैं वहाँ सूर की गोपियाँ उद्धव के ज्ञान की निन्दा, उसका उपहार और तिरस्कार भी करती हैं। सूर ने प्रेम मार्ग को उत्तम सिद्ध किया है। सूरदास की यह मौलिकता भ्रमरगीत काव्य परम्परा के प्रवर्तन में सहायक रही है। सूरदास से प्रभावित होकर परवर्ती नन्ददास, सत्यनारायण 'कवि रत्न' जगन्नाथदास 'रत्नाकर' आदि कवियों ने भ्रमरगीत लिखे हैं।

सूरदास की बाल-लीलाओं से प्रभावित होकर तुलसीदास ने भी न केवल भगवान् राम की बाल-लीलाओं का उसी तरह वर्णन किया प्रत्युत कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन करने के लिए कृष्ण गीतावली की भी रचना की।

मैथिली-कोकिल विद्यापति ने राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों को जो माधुरी प्रदान की थी, उसी शृंगार की अनेक भाव-दशाओं का चित्रण सूर ने भी किया। सूर की राधा संयोग में भी वियोग की आशंका से व्याकुल और वियोग में भी मिलन की लालसा से उत्कंठित है। किन्तु सूरदास की मौलिकता इस दृष्टि से है कि सूर ने राधा के रूप में एक अपूर्व भक्त का स्वरूप उपस्थित किया है। राधा का प्रेम अपना उपमान आप ही है। किन्तु परवर्ती कवियों के लिए भक्ति रस की दुर्बोधता या विलासिता की वृद्धि के कारण राधा का स्वरूप बदल गया और एक सामान्य नायिका जैसा रह गया। रीतिकालिन कवियों के कृष्ण काव्य में भक्ति तत्त्व 'बहाने-भर के लिए' रह गया शृंगार तत्त्व प्रमुख हो गया।

इस प्रकार सूरदास हिन्दी साहित्य के पूर्वमध्यकालीन यानी भक्तिकाल की सगुणमार्गी कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। हिन्दी काव्य में वे भ्रमरगीत परम्परा के भी प्रवर्तक हैं। 'अष्टाछाप' के कृष्ण भक्त कवियों में सर्वप्रथम गणना सूरदास की है। काव्य और संगीत का मधुर समन्वय सूरदास के पदों में मिलता है। सूर की रचना जयदेव और विद्यापति के गीत-काव्यों की शैली पर है। 'सूरसागर' में कोई राग या रागिनी छूटी न होगी, इससे यह संगीत-प्रेमियों के लिए भी बड़ा भारी खजाना है। सूरदास वात्सल्य रस के प्रतिष्ठापक हैं। सूर ने बाल-लीलाओं में कृष्ण के लौकिक स्वरूप का विकास करके लोकोन्मुखी काव्यधारा का निर्माण किया। उनका 'सूरसागर' ब्रज-जीवन की सभी विशेषताओं से परिपूर्ण है शान्त, वात्सल्य और शृंगार का जैसा उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया, वैसा किसी कवि ने नहीं। आगे की सभी उक्तियाँ सूर की जूठी-सी लगती हैं। सूर हृदय से सच्चे पारखी थे। वे कवि पहले थे, भक्त बाद में। उनके काव्य में अनुभूति की तरलता है जो पाठकों को रससिक्त कर देती है। रूप-सौंदर्य के कवि सूरदास अपना सानी नहीं रखते। चलती ब्रजभाषा को साहित्यिकता प्रदान करके सूरदास ने बहुत बड़ा कार्य किया है। हृदय की गहराई से निःसृत उनकी भावधारा सहृदयों को निरन्तर भाव-विभोर करके रस मग्न करती रहेगी। 'विश्व-सूर पंचशती' जयन्ती के उपलक्ष्य में आयोजित गोष्ठियों में भी विश्व के विद्वानों ने सूरदास की अद्भुत प्रतिभा का अनुभव किया है। भाव तरंगों को आंदोलित करने वाला उनका 'सूरसागर' कभी विस्मृत नहीं होगा। हिन्दी काव्य-जगत के लिए यह उनकी सबसे बड़ी देन है। उनके इस योगदान का मूल्यांकन विविध दृष्टियों से विद्वानों ने किया है और कर रहे हैं। इसी से काव्य के शाश्वत मूल्य का अनुमान किया जा सकता है।

प्रतिपाद्य

मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि है। सूरदास के सम्बन्ध में प्रचलित है कि वे गऊघाट पर विनय के पद गाया करते थे; वल्लभाचार्य जी ने सूर से कहा—

**‘सूर है कैं ऐसे काहे कौ घिघियात हो,
कछु भगवद् लीला वर्णन कर।’**

इस गुरुमन्त्र को स्वीकार कर सूर ने राधा और कृष्ण-लीला से सम्बन्धित पदों की रचना की। सूर के काव्य में कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन की क्रियाएँ चित्रित हैं। बाल क्रीड़ाओं के सम्बन्ध में तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि—‘सूर वात्सल्य रस का कोना-कोना झाँक आए हैं।’ प्रस्तुत पदों में गोकुल-लीला के अन्तर्गत माता यशोदा कृष्ण को चलना सिखा रही है। इस प्रक्रिया में कृष्ण के पाँव डगमगाते हैं और फिर सँभलते हैं। इस स्थिति में माता के हृदय की आनंदातिरेक भाव-भंगिमा का जैसा अद्भुत चित्र सूर ने उकेरा है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। दूसरे पद में कृष्ण की बाल-जिज्ञासा का उल्लेख किया गया है। बालक कृष्ण बड़े मासूमियत ढंग से माता यशोदा से प्रश्न करते हैं कि कितना समय हो गया है उन्हें दूध पीते-पीते, परन्तु उनकी चोटी अभी भी छोटी ही है। माता तुम मुझे माखन-रोटी भी नहीं देती और कच्चा दूध ही पिलाती हो। माता यशोदा कृष्ण और बलराम की इस अनोखी अद्भुत जोड़ी को देखकर खुश हो रही है। तीसरे पद में भी कृष्ण की बाल-चेष्टाओं का वर्णन सूरदास ने किया है। वे कहते हैं कि बालक कृष्ण अपने आँगन में कुछ गा रहे हैं एवं नाच रहे हैं। कभी वे काली गाय को बुलाते हैं तो कभी काली एवं भूरी गायों को। इसी तरह की अनेक क्रीड़ाओं द्वारा माता यशोदा को हर्षिते हैं। फिर आगे वे माता यशोदा को यह बताने का प्रयत्न करते हैं कि उन्होंने माखन नहीं चुराया। अपनी सफाई में वे कहते हैं कि देखो माँ कितना ऊँचा माखन रखा है। मैं तो छोटा-सा बालक हूँ और मेरे हाथ भी छोटे हैं फिर भला मेरे छोटे-छोटे हाथ वहाँ कैसे पहुँच सकते हैं? मैं भला वहाँ कैसे पहुँच सकता हूँ। कृष्ण की इस चतुराई पर माता का सारा क्रोध शान्त हो जाता है और वे कृष्ण को गले से लगा लेती हैं। इस प्रकार कवि सूरदास कृष्ण-यशोदा के माध्यम से वात्सल्य भाव-भंगिमा का बड़ा ही अद्भुत चित्रण करते हैं।

गोकुल-लीला

व्याख्या भाग

1. सिखवति चलन.....नँदरैया।

शब्दार्थ : अरबराइ = हड़बड़ाना, लड़खड़ाकर। धरनी = धरती, पृथ्वी। धरे = रखना। बदन = शरीर। बिलोकति = देखना। खेलौ = खेलना। बिलसत = उल्लसित।

प्रसंग : प्रस्तुत पद भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के कृष्ण भक्त कवि सूरदास द्वारा रचित ‘सूरसागर’ में ‘गोकुल लीला’ से लिया गया है। श्रीकृष्ण के बाल्य-मन की विभिन्न झाँकियों को प्रस्तुत करने

वाले सूर ने इस पद में माता यशोदा के वात्सल्य सुख का वर्णन किया है। उन्होंने बालक की स्वाभाविक क्रियाओं का अत्यन्त सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

व्याख्या : सूरदास जी कहते हैं कि माता यशोदा श्रीकृष्ण को चलना सिखा रही हैं। जब कृष्ण डगमगाते हुए धरती पर पैर रखते हैं तो (इस डर से कि कहीं कृष्ण लड़खड़ाकर गिर न जाएँ और गिरने से कहीं चोट न लग जाए) माँ अनायास ही अपने हाथ से कृष्ण का हाथ पकड़ लेती है। कभी माता कृष्ण के मुख-सौंदर्य को एकदम देखती हुई आनंदातिरेक में भावविभोर हो उनकी बलैया लेने लगती है, तो कभी माता यशोदा अपने कुल देवता से प्रार्थना करती है कि मेरा कुंवर कन्हाई चिरंजीवी हो। कभी माता बलदाऊ (बलराम) को आवाज देकर बुलाती हुई कहती है कि दोनों भाई इसी आँगन में एक साथ मिलकर खेलो। सूरदास कहते हैं कि इस प्रकार अनेक तरह की प्रेममयी नित्य लीलाओं से माता यशोदा और नन्दजी अत्यन्त प्रसन्न होकर उल्लसित हो रहे हैं।

- विशेष :
1. वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति इस पद में हुई है। कृष्ण के बालपन पर माता यशोदा के प्रफुल्ल हृदय को दर्शाया गया है।
 2. कोमलकांत पदावली है। प्रसाद गुण है।
 3. भक्ति रस का चित्रण है।
 4. भाषा ब्रज है।
 5. छन्द पद है।
 6. 'बलाएँ लेना' मुहावरे का सटील प्रयोग हुआ है।

2. मैया कबहिं.....हरि-हलधर की जोरी।

शब्दार्थ : कितनी बार = कितनी बार। अजहूँ = आज भी। बेनी = चोटी। न्हावावत = नहाने। काचौ दूध = कच्चा दूध। पचि-पचि = जिद करके। जोटी = जोड़ी।

प्रसंग : कृष्ण की बाल-सुलभ चेष्टाओं, जिज्ञासाओं का मनोरम चित्रण किया गया है। कृष्ण की अपनी चोटी का अधिक न बढ़ पाना उनके लिए चिन्ता का विषय बन जाता है। वे अपनी माता से शिकायत करते हुए कह रहे हैं कि उनकी चोटी भाई बलराम की चोटी के बराबर क्यों नहीं है, वह अभी भी छोटी है।

व्याख्या : माता यशोदा श्रीकृष्ण को दूध पिलाना चाहती हैं जबकि उन्हें माखन-रोटी से ज्यादा लगाव है, इसी आग्रह को सतर्क प्रस्तुत करते हुए कृष्ण कहते हैं कि मैया! बता तो, मेरी चोटी कब बढ़ेगी? तेरे कहे अनुसार चोटी बढ़ाने के लिए कितनी बार मुझे दूध पीते-पीते हो गया पर मेरी यह चोटी आज भी छोटी की छोटी ही है। तू तो कहा करती है कि अगर तू दूध पियेगा तो तेरी चोटी भी बलदाऊ के समान काली-मोटी नागिन के समान धरती पर लोटने लगेगी-पर ऐसा तो कुछ भी नहीं हुआ; देखा माँ। वास्तव में बात कुछ और है-तू मुझे कच्चा दूध (धारोष्ण) जिद कर-करके पिलाती है जबकि कच्चा दूध पीने में मेरी तनिक भी रुचि नहीं है, और जिसमें मेरी रुचि है वह माखन-रोटी खाने को नहीं देती है। वास्तव में

माखन-रोटी खाने से ही चोटी बढ़ेगी-दूध पीने से नहीं, कृष्ण के इस बाल हठ और बाल तर्क को देख-सुनकर माँ बहुत प्रसन्न होती है। सूरदास जी कहते हैं कि माता यशोदा आशीर्वाद देते हुए कहती हैं कि तुम दोनों भाई चिरंजीवी हो, हरि-हलधर की यह जोड़ी सदा बनी रहे।

- विशेष : 1. माता यशोदा कृष्ण की लीलाओं से गदगद हो रही हैं।
 2. बाल-मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण सूरदास ने यहाँ प्रस्तुत किया है। कृष्ण की मनोदशा में भी एक सौंदर्य है।
 3. 'नागिन सी' में उपमा अलंकार है।
 4. छंद पद है।
 5. भाषा ब्रज है।

3. हरि अपनै.....देखत भावत।(27)

शब्दार्थ : गावत = गाना। रिझावत = लुभाना। काजरी-धौरी = काली, सफेद गाय। चितै = देखकर। लौनी = ताजा मक्खन। हरष = आनन्द।

प्रसंग : प्रस्तुत पद कृष्ण भक्त कवि सूरदास द्वारा रचित है। वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण अब थोड़ा बड़े हो गए हैं और अपने पैरों पर चलने लगे हैं। वे अपने आँगन में नाचने गाने लगे हैं। उनकी इस छवि को देखकर माता यशोदा बहुत ही आनन्दित हो रही हैं।

व्याख्या : सूरदास जी कहते हैं कि हरि (श्रीकृष्ण) अपने आँगन में ऐसे ही कुछ गा रहे हैं। अपने छोटे-छोटे पैरों से नाच रहे हैं और मन ही मन (गायन एवं नृत्य की मुद्राओं पर) प्रसन्न हो रहे हैं। कभी (नाचते-नाचते) बाँह उठाकर काली और सफेद गायों को नाम से पुकार-पुकारकर अपने पास बुलाते हैं, तो कभी नन्द बाबा को पुकारते हैं और कभी आँगन से घर-भीतर आ जाते हैं। कभी थोड़ा-सा मक्खन अपने हाथ में लेते हैं तो कभी अपने मुँह में डाल लेते हैं। कभी मणिमय खम्भों में अपना प्रतिबिम्ब देखकर प्रतिबिम्बित बालक को दूसरा बालक समझकर स्वयं लौनी (ताजा मक्खन) खाते हैं तो कभी उस बालक को खिलाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण की इस बाल-लीला को माता छिप-छिपकर देखती हैं और मन ही मन हर्षित होती हुई वात्सल्य आनन्द में निमग्न हो जाती हैं। सूरदास जी कहते हैं बालक कृष्ण के ये बालचरित (लीलाएँ) रोज-रोज देखते हुए भी बहुत अच्छे लगते हैं।

- विशेष : 1. बालक कृष्ण की लीलाओं का सहज, स्वाभाविक चित्रण किया गया है।
 2. वात्सल्य रस का चित्रण है।
 3. अनुप्रास, पुनरुक्ति, स्वाभोक्ति अलंकार है।
 4. बिम्बात्मक पद है।
 5. भाषा ब्रज है।

4. मैया मैं नाहिं.....नहि पायौ। (60)

शब्दार्थ : ख्याल परै = ध्यान आता है, समझ में आता है। सीकै = छींके, कुत्ते-बिल्ली से खद्य पदार्थ को बचाने के लिए छत से लटकाया जाने वाला उल्टी टोपी जैसा झूला, जिसमें रक्षणीय पदार्थ का बर्तन रख देते हैं। भाजन = बर्तन। हाँ = मैं। नान्हे = छोटे। कर = हाथ। दोना = पते का बर्तन। पीठि = कमर पीछे। दुरायौ = छिपा लिया। साँटि = छोटी लकड़ी, संटी। मोझौ = मोहित किया। भक्ति-प्रताप = भक्ति का यश, प्रभाव। जसुमति = यशोदा माता। सिव = शिव, शंकर। विरंचि = ब्रह्मा।

प्रसंग : इस पद में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन है। वात्सल्य भक्ति-भावना में अनुरक्त भक्त कवि ने बालकृष्ण की बाल-चेष्टाओं का ऐसा मनोहारी चित्रण किया है कि श्रीकृष्ण की माखन-चोरी चतुराई पर माता यशोदा की तरह सभी मोहित हो जाते हैं।

व्याख्या : श्रीकृष्ण माखन-चोरी की सफाई देते हुए यशोदा माता से कहते हैं कि माता! मैंने मक्खन नहीं खाया है। समझ में आता है कि मेरे मित्रों ने मिलकर मेरे मुख पर लपेट दिया जिससे तू समझती है कि मैंने मक्खन खाया है। यह झूठ है। दूसरी बात यह है कि जिस छींके पर मक्खन का बर्तन लटकाया हुआ था, वह भी इतना ऊँचा था कि मैं अपने छोटे हाथों से उसको पकड़ भी नहीं सकता था। लेकिन चोरी का एक प्रमाण यह भी था कि कृष्ण के हाथों में मक्खन भरा (दोना) था। उसको भी कृष्ण ने चतुराई से पीठ पीछे छिपा लिया तथा मुख पर लिपटे मक्खन को भी पोंछ डाला। श्रीकृष्ण की इस बाल-चतुराई पर मोहित होकर यशोदा माता ने प्रताड़ना के लिए हाथ में ली हुई संटी भी डाल दी और हँसकर कृष्ण को गले लगा लिया। श्रीकृष्ण की बाल-विनोदपूर्ण मोहकता ने यशोदा माता के मन को मोहित कर लिया। श्रीकृष्ण ने बाल-विनोद लीला वात्सल्य भक्ति से प्रभावित होकर दिखाई। सूरदास कवि कहते हैं कि यशोदा माता जैसा वात्सल्य भक्ति का सुख शिव और ब्रह्मा ने भी प्राप्त नहीं किया है। यहाँ अद्भुत का समावेश करके आलंबन कृष्ण को अलौकिक बना दिया है।

- विशेष :**
1. शिशु-सुलभ बाल चेष्टाओं को देखकर आनन्दित होने वाली माता के वात्सल्य सुख को अलौकिकता प्रदान करने के लिए भक्त कवि ने अपने भक्तिभाव में अद्भुत का समावेश किया है जिससे अवतारी बालकृष्ण का परब्रह्मत्व सिद्ध होता है।
 2. प्रस्तुत पद भारतीय जन-मानस का कंठहार बना हुआ है।
 3. ब्रजभाषा की मधुरता और गेयता देखते ही बनती है।
 4. गुण, अलंकार भी अनायास ही काव्य-शोभा बढ़ाने वाले हैं।

3. दोहावली छंद : तुलसीदास

—डॉ. प्रेमलता भसीन
मुक्त शिक्षा विद्यालय

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में भक्ति और दर्शन की परंपरा को अग्रसर करने वाले भक्त कवियों में तुलसीदास महत्तम स्थान के अधिकारी हैं। तुलसी का युग मूल्यों के विघटन का युग था। सर्वत्र उच्छृंखलता और उनके मर्यादामय व्यक्तित्व का प्रस्तुतिकरण तुलसी की निजी विशिष्टता है। अनीति और अनाचार के मध्य नीति, शील और मर्यादा की स्थापना के कारण ही तुलसीदास अपने समकालीन समाज ही नहीं, प्रत्येक युग के समाज के लिए सार्थक सिद्ध होते हैं।

कवि-परिचय

मध्यकाल के अन्य अनेक कवियों की भाँति तुलसीदास के जन्म-समय, जन्म-स्थान आदि से संबद्ध जानकारीयों प्रायः अधूरी एवं विवादास्पद हैं। विद्वानों के एक वर्ग के अनुसार तुलसीदास का जन्म संवत् 1554 है, तो दूसरे वर्ग के अनुसार उनका जन्म संवत् 1583 में हुआ। इन मतभेदों के बीच जो प्रायः स्वीकृत मत उभरता है, उसके अनुसार तुलसी का जन्म संवत् 1589 में हुआ। तुलसी के जन्म स्थान के संबंध में भी राजापुर और सोरों, इन दो स्थानों का नाम लिया जाता है। इनमें भी राजापुर संबंधी मत अधिक मान्य है। तुलसी के पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी कहा जाता है। ऐसी जनश्रुति है कि अभुक्तमूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण माता-पिता ने अमंगलकारी समझकर इनका त्याग कर दिया। माता-पिता विहीन इस बालक का बचपन बड़े कष्ट में बीता। बालपन में सोरों में इनकी भेंट स्वामी नरहर्यानन्द से हुई जिन्होंने गुरु-रूप में इनको राम कथा का ज्ञान दिया। तुलसीदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ उनके गुरु की ओर संकेत करती हैं।

बंदौ गुरु पद कंज कृपासिंह नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर
मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेऊँ अचेत

तुलसीदास का विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ। इसी ने अति आसक्त तुलसी की भर्त्सना कर सांसारिक मोह की अपेक्षा रामभक्ति का मार्ग दिखाया। इसी कारण तुलसी सामान्य तुलसी न रहकर रामभक्त तुलसी बन गये। आजीवन रामभक्ति में रत इस महाकवि का देहावसान सं. 1680 में हुआ।

साहित्यिक-व्यक्तित्व

तुलसीदास के संपूर्ण काव्य का मूल विषय रामकथा है। उन्होंने ऐतिहासिक-पौराणिक रामकथा-को अपनी भक्ति-भावना से पुष्ट कर अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। वैसे तो तुलसी के नाम से अनेक पुस्तकें प्राप्त होती हैं, जिनकी संख्या 36 तक गिनाई जाती है किंतु अब तक की खोजों के आधार पर

तुलसी की रचनाओं की सर्वमान्य संख्या 13 है। इनमें भी रचनाओं के कालक्रम पर मतभेद है कि कौन-सी रचना पहले की है और कौन-सी बाद की। तुलसी की सर्वसम्मत रचनाएँ इस प्रकार हैं—रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, श्रीकृष्णगीतावली, जानकी मंगल, पार्वती-मंगल, रामललानहछू, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न और हनुमान बाहुक।

तुलसीदास की लोकप्रियता का प्रमुख आधार स्तंभ 'रामचरितमानस' है। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार यह हिन्दुओं का बाइबिल है। यही काव्य की कवि के व्यक्तित्व और विचारधारा का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। यही एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें निरूपित शाश्वत जीवन मूल्य और उदात्त आदर्श इसे विश्व-वाङ्मय का महत्त्वपूर्ण अंश बना देते हैं। इसमें तुलसीदास ने किसी एक सीमित वर्ग के जीवन का चित्रांकन नहीं किया अपितु जन-जीवन की आशा-आकांक्षाएँ भी इसमें प्रतिफलित हुई हैं। इसमें तुलसी ने विष्णु के अवतार राम के जीवन की समस्त घटनाओं को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि उनके माध्यम से जीवन के प्रत्येक पक्ष का आदर्शमय रूप पाठक को गहराई तक प्रभावित करता है। उन्होंने राम के रूप में आदर्श और मर्यादा का जो प्रतिमान स्थापित किया है, वही 'रामचरितमानस' को समाज के प्रत्येक वर्ग में समादर दिलाने में समर्थ हुआ है।

भक्ति और दर्शन की दृष्टि से भी 'रामचरितमानस' एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। तुलसी ने अपने युग में प्रचलित सभी भक्ति मार्गों और दार्शनिक संप्रदायों के गुणों का ग्रहण और अवगुणों का परिहार करके एक समन्वयवादी सिद्धांत को स्थापित किया, जिसने निर्गुण और सगुण ब्रह्म को एकाकार कर दिया—

अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूप। अकथ अगाथ अनादि अनूप।

एक दारुगत देखिअ एकू। पावक राम जुग ब्रह्म विवेकू॥

भक्ति और दर्शन की दृष्टि से ही नहीं, काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी 'रामचरितमानस' उत्कृष्ट कोटि का काव्य है। उसकी रचना का उद्देश्य अथवा काव्य स्वयं कवि के शब्दों में इस प्रकार है—

कीरति भनिति भूत भलि सोई। सुरसरि सम सब कहूँ हित होई॥

'रामचरितमानस' की रचना का प्रयोजन 'स्वान्तः सुख' के साथ-साथ लोकहित भी है। लोकहित की मान्यता को स्वीकृति देते हुए भी काव्य का सौंदर्य-पक्ष 'मानस' में उपेक्षित नहीं रहा है। इस प्रबंध-काव्य की वक्ता-श्रोता शैली इसे विशिष्टता प्रदान करती है। इस काव्य में वर्णित मार्मिक स्थल, भावों और रसों की सुंदर व्यंजना, अलंकारों और छंदों का सुष्ठु प्रयोग, सहज-सरल भाषा इसे उत्तम काव्य की कोटि में स्थित करते हैं।

'विनयपत्रिका' मूलतः तुलसी का आत्मनिवेदन-परक ग्रंथ है। इसे तुलसी की अंतिम रचना कहा जाता है, जिसमें समय-समय पर लिखित 179 पद संकलित हैं। तुलसी के जीवन का अंतिम समय अत्यंत कष्टों और शारीरिक रुग्णता का समय था। इन पदों के माध्यम से कवि ने अपने इष्ट का ध्यान नहीं दुःखों की ओर आकृष्ट किया है, जिसके कारण उनका जीवन अत्यंत दैन्यपूर्ण हो गया था। तुलसी की करुण दीनता और इष्ट के प्रति करुणा की प्रार्थना 'विनयपत्रिका' में बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत है—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पा पुंज-हारी॥

जैसा कि इस रचना के नाम से स्पष्ट है, यह कवि के विनय की पत्रिका है, जिसे उन्होंने विभिन्न देवी-देवताओं के माध्यम से अपने आराध्य राम तक पहुँचाया है। पत्रिका के अंत में स्वयं राम तुलसी की पत्रिका को स्वीकार करते हुए उस पर 'सही' करते हैं—

बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।

मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परि रघुनाथ सही है।

कवि की अन्य रचनाओं की तुलना में लोकप्रियता की दृष्टि से 'रामचरितमानस' के पश्चात् 'विनयपत्रिका' का स्थान है। किंतु भाषा की संस्कृतनिष्ठता और क्लिष्टता के कारण यह रचना सुशिक्षित वर्ग में ही अधिक लोकप्रियता पा सकी है, जन-सामान्य में नहीं।

'कवितावली' सात कांडों में विभक्त रचना है किंतु इसमें 'मानस' की प्रबंधात्मकता का अभाव है। यह कवित्तों में निबद्ध रामकथा है, जिसके अलग-अलग समय पर लिखे गये छंदों को कथाक्रम में पिरोया गया है। इस कृति में तुलसी ने राम की कीर्ति के वर्णन के साथ-साथ युगीन परिवेश और परिस्थितियों का भी चित्रण किया। अपने युग के संघर्षपूर्ण जीवन और समाज में फैली महामारियों और कुव्यवस्था का अंकन 'कवितावली' की विशिष्टता है।

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,

बनिक को बनज न, चाकर को चाकरी।

'कवितावली' में उपलब्ध ऐसी अनेक पंक्तियाँ तत्कालीन समाज और सामाजिक व्यवस्था के प्रति कवि की जागरूकता की ओर संकेत करती हैं।

'गीतावली' तुलसीदास की ऐसी सरस रचना है, जिसमें कवि ने रामकथा के सभी सरस प्रसंगों को मुक्त भाव से वर्णित किया है। एक ही प्रसंग एवं स्थिति को अनेक रूपों में वर्णित करते हुए कवि का मन अघाता नहीं है। अपने इष्ट राम के सौंदर्य के प्रति भाव-विभारतार, बीहड़ वन-मार्ग में जाते राम के कोमल सौंदर्य को देखकर विह्वलता आदि स्थितियों में कवि-हृदय की उन्मुक्त तीव्रता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठए बन बालक ऐसे।

वस्तुतः विविध राग-रागिनियों में रचित इस रचना का फलक इतना विस्तृत और बहुआयामी है कि इसे दूसरा 'रामचरितमानस' कहा जा सकता है। रचना-सौष्टव, ललित कल्पना और भाव-विन्यास तथा जीवन की गहरी पकड़ के कारण निश्चय ही 'गीतावली' कवि की महान रचना है।

'दोहावली' तुलसी की मुक्तक रचना है, जिसमें 550 दोहे तथा 23 सोरठे संकलित हैं। 'कृष्ण गीतावली' कृष्ण के जीवन पर आधारित एक लघु रचना है। इसी प्रकार तुलसी की अन्य रचनाएँ पार्वती मंगल, जानकी मंगल आदि तुलसी की लघु रचनाएँ होते हुए भी भावप्रणता और काव्य कौशल का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

दोहावली : प्रतिपाद्य

तुलसीदास राम भक्ति काव्य के मूलाधार हैं। राम की भक्ति तुलसी के संपूर्ण काव्य का आख्यान है। तुलसी सगुण रामभक्त कवि हैं। उनका पूर्ण विश्वास था कि राम का लोक रक्षक रूप तथा निर्गुण ब्रह्म की अपेक्षा सगुण ब्रह्म ही जन सामान्य के अधिक निकट हो सकता है। तुलसी के आराध्य राम शिव शक्ति और सौंदर्य के पूँजीभूत रूप हैं जो किसी भी भक्त हृदय की भक्ति के सहज आलंबन हो सकते हैं। दोहावली तुलसीदास की रचना है। दोहावली में अधिकांश दोहे मानस के हैं। कवि ने चातक के ब्याज से दोहों की एक लंबी शृंखला लिखकर भक्ति और प्रेम की व्याख्या की है। दोहावली दोहा-संकलन है। मानस के भी कुछ कथा निरपेक्ष दोहों को इसमें स्थान दिया गया है। संभव है कुछ दोहे इसमें भी प्रक्षिप्त हों, पर रचना की प्रामाणिकता असंदिग्ध है।

तुलसीदास जी राम की अभ्यर्थना करते हुए कहते हैं आप ही एक भरोसा हो, एक बल हो, एक आशा हो, एक विश्वास हो। हे साँवरे राम आपकी चातक पक्षी की तरह तुलसीदास भक्ति करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि आचरण चाहे सही हो या फिर गलत, सभी को अपना आचरण अच्छा लगता है। जैसे जो नित्यप्रति लहसुन का प्रयोग करते हैं उन्हें उसकी दुर्गंध नहीं आती है। आगे तुलसीदास कहते हैं कि दुष्ट आचरण करने वाले लोगों को अच्छी तरह समझ जाना चाहिए। जैसे पतंग की डोर को ढीला छोड़ने पर वह जमीन पर आ जाती है और ऊपर खींचने पर वह आकाश में चढ़ जाती है, वैसी ही दुष्टों की प्रवृत्ति होती है।

तुलसीदास कहते हैं कि सिंह के समान तेजस्विता का स्वांग करने वाले जो कुत्ते के समान कर्म करते हैं, और वह कामना करते हैं कि कीर्ति, विजय और यथायोग्य सम्मान मिले। ऐसा सम्भव नहीं होता। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की मुख मुद्रा रखने वाले, विभिन्न रुचियों वाले, कई प्रकार के वचन बोलने वाले को, भाँति-भाँति का आचार व्यवहार करने वाले, इनसे दूर ही रहना चाहिए। इनके अज्ञान का कोई अंत नहीं है। इन दोहों को पढ़कर प्रतीत होता है कि तुलसीदास का मन समाज में व्याप्त विभिन्न विवादों इत्यादि का अवलोकन कर रहा था। इन दोहों में दैहिक, दैविक, भौतिक ताप से त्रस्त लोक का यथार्थ अंकन देखा जा सकता है।

दोहावली

व्याख्या भाग

1. एक भरोसो.....चातक तुलसीदास॥277॥

शब्दार्थ : बल = ताकत। आसा = आशा। चातक = पक्षी।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास की काव्य रचना दोहावली शीर्षक से उद्धृत है। इस रचना में नीति एवं आचरणपरक दोहे हैं। इस दोहे में कवि राम के प्रति अपनी एकनिष्ठ भक्ति की ओर संकेत कर रहे हैं। तुलसीदास अपने मन की दृढ़ता भी व्यक्त कर रहे हैं।

व्याख्या : तुलसीदास जी, राम जी की आराधना करते हुए कहते हैं कि आप ही एक भरोसा हो, एक बल हो, एक आशा हो, एक विश्वास हो। हे! साँवरे राम आपकी, चातक पक्षी की तरह तुलसीदास

भक्ति करते हैं, अर्थात् जिस प्रकार प्यासा होने पर भी चातक पक्षी केवल स्वाति नक्षत्र के जल को ही ग्रहण करता है, उसी प्रकार तुलसी का भक्त मन भी राम भक्ति के प्रति एकनिष्ठ है। किसी अन्य आराध्य (देवी-देवता) की कृपा की उसे अपेक्षा नहीं है।

- विशेष : 1. तुलसीदास को राम के अतिरिक्त किसी अन्य देवी-देवता की भक्ति स्वीकार्य नहीं है।
2. ईश्वर ही मेरी रक्षा करेगा यह विश्वास शरणागति का प्रमुख अंग है।
3. राम की भक्ति तुलसी के संपूर्ण साहित्य का आख्यान है।
4. एकनिष्ठ भक्ति की व्यंजना है।
5. दोहा छंद है।
6. अनुप्रास अलंकार है।

2. तुलसी अपनो.....लहसुनहु को बासु॥355॥

शब्दार्थ : आचरण = व्यवहार। कासू = किसको। नित = प्रतिदिन। वासु = गंध।

प्रसंग : इस दोहे में कवि कह रहे हैं कि मनुष्य को अपने आचरण, चरित्र, व्यवहार पर सर्वाधिक ध्यान देना चाहिए और उन्हें निर्मल बनाना चाहिए।

व्याख्या : तुलसीदास जी कहते हैं कि आचरण चाहे सही हो या फिर गलत, सभी को अपना आचरण अच्छा लगता है। जैसे जो नित्य प्रति लहसुन का प्रयोग करते हैं उन्हें उसकी दुर्गंध नहीं आती। क्योंकि लहसुन का नित्य प्रयोग करने वाला उसकी दुर्गंध से भली-भाँति परिचित होता है। इसी प्रकार अपने अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने गुणों और दुर्गुणों का प्रकटीकरण स्वतः होता रहता है।

- विशेष : 1. तुलसीदास मानव कल्याण के कवि हैं।
2. कवि के अनुसार सृष्टि का कल्याण चरित्र निर्माण में है।
3. नीति कथन है।
4. दोहा छंद है।
5. अनुप्रास अलंकार है।

3. नीच गुड़ी ज्यो जानिबों.....खेंचत चढ़त आकास॥401॥

शब्दार्थ : गुड़ी = पतंग। महि = पृथ्वी। खेंचत = खींचते ही। अकास = आकाश।

प्रसंग : इस दोहे में कवि कहते हैं कि अधम पुरुष दुर्गुणों से युक्त होते हैं। इन्हें सदैव नियंत्रण में रखना चाहिए।

व्याख्या : तुलसीदास जी कहते हैं कि अधम पुरुष दुर्गुणों से युक्त होता है। दुष्ट आचरण करने वालों को अच्छी तरह समझ जाना चाहिए। जैसे पतंग की डोर को ढीला छोड़ देने पर वह जमीन पर गिर जाती है और खींचने पर आकाश में चढ़ जाती है। वैसे ही दुष्टों की प्रवृत्ति होती है। ऐसे लोगों को नियंत्रण में रखना चाहिए।

- विशेष : 1. तुलसीदास दुष्टों की तुलना आकाश में उड़ने वाली पतंग से करते हैं। यह ढील देने पर पृथ्वी पर गिरती है और खींचने पर आकाश में चढ़ जाती है।
2. दुष्ट व्यक्ति की प्रवृत्ति को उजागर किया गया है।
3. दोहा छंद है।
4. उपमा अलंकार है, अनुप्रास अलंकार है।

4. सारदुल को स्वांग.....कीरति विजय विभूति॥412॥

शब्दार्थ : सारदुल = सिंह। स्वांग = नाटक। कूकर = कुत्ता। करतूती = बुरा कर्म। कीर्ति = यश। विभूति = ऐश्वर्य।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहे में कवि कहते हैं कि यह समाज उन्नति और अवनति इन दोनों के सहयोग से परिचालित है।

व्याख्या : तुलसीदास जी कहते हैं कि सिंह के समान तेजस्विता का स्वांग करने वाले जो कुत्ते के समान कर्म करते हैं और वह कामना करते हैं कि कीर्ति, विजय और यथायोग्य उन्हें सम्मान मिले। ऐसा संभव नहीं होता। जो दुष्ट अपने कर्म सिंह और कूकर के समान दिखाते हैं। उन्हें दंडित करने की प्रक्रिया अविलंब करनी चाहिए।

- विशेष : 1. जो आडंबर प्रिय मनुष्य है उन्हें तिरस्कृत करके दंडित करके, उन पर तुलसीदास जी विजय रूपी दया के पक्षपाती हैं।
2. दोहा छंद है।
3. अनुप्रास अलंकार है।

5. बहु मुख, बहु रुचि.....अज्ञान अपार॥490॥

शब्दार्थ : भलो मनाइबो = भला मानना। अपार = विशाल।

प्रसंग : इस दोहे में कवि सम समाज और समान लोक व्यवहार पर बल दे रहे हैं कि वचन, व्यवहार, सुख, रुचि इनमें शुद्धता का होना आवश्यक है।

व्याख्या : तुलसीदास जी कहते हैं कि विभिन्न प्रकार की मुख्य मुद्रा रखने वाले, विभिन्न रुचियों वाले, कई प्रकार के वचन बोलने वाले, भाँति-भाँति का अचार-व्यवहार करने वाले, इनसे दूर ही रहना चाहिए। क्योंकि इनके अज्ञान का कोई अंत नहीं है।

- विशेष : 1. समाज विमुख कार्य मनुष्य जाति के लिए कष्टकारक है।
2. समाज मनुष्य के कल्याण और लोक-रक्षा के लिए बना है।
3. दोहा छंद है।
4. अनुप्रास अलंकार है।

प्रश्नों की स्वयं जाँच करना

प्रश्न (क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर अपने शब्दों में लिखिए—

1. पाठ्यक्रम के आधार पर तुलसी दोहावली का सार अपने शब्दों में लिखिए।
2. पाठ्यक्रम के आधार पर दोहावली में तुलसीदास ने क्या शिक्षा दी है स्पष्ट कीजिए?
3. 'तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु' पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।
4. 'तुलसी तापर चाहिए कीरति विजय विभूति' से क्या तात्पर्य है स्पष्ट कीजिए।
5. तुलसी के अनुसार दुष्ट आचरण करने वाले लोगों को कैसे समझाना चाहिए?
6. तुलसी के अनुसार किसके अज्ञान का कोई अंत नहीं है?
7. सिंह के समान तेजस्विता का स्वांग करने वाले क्या कामना करते हैं स्पष्ट कीजिए?
8. चातक पक्षी के समान तुलसीदास जी किसकी भक्ति करते हैं स्पष्ट कीजिए?
9. पतंग के समान किसकी प्रवृत्ति होती है स्पष्ट कीजिए?
10. तुलसीदास का साहित्यिक परिचय दीजिए।

प्रश्न (ख) कोष्ठक में दिए गए शब्दों में सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए—

1. कवि राम के प्रति अपनी एकनिष्ठ की ओर संकेत करते हैं।
(पूजा/आराधना/भक्ति)
2. जिस प्रकार प्यासा होने पर भी चातक को की बूँद की ही आस रहती है।
(वर्षा/नदी/स्वाति नक्षत्र)
3. सभी को अपना अच्छा लगता है। (व्यवहार/स्वभाव/आचरण)
4. लहसुन का नित प्रयोग करने वाला उसकी से भली-भाँति परिचित होता है।
(गंध/सुगंध/दुर्गंध)
5. अधम पुरुष से युक्त होते हैं। (गुणों/सद्गुणों/दुर्गुणों)
6. तुलसीदास दुष्टों की तुलना आकाश में उड़ने वाली से करते हैं।
(पक्षी/चिड़िया/पतंग)
7. सिंह के समान तेजस्विता का स्वांग करने वाले जो के समान कर्म करते हैं।
(जानवरी/पक्षी/कुत्ते)
8. उन पर दंडित करने की प्रक्रिया करनी चाहिए। (तुरंत/अचानक/अविलंब)
9. कवि सम समाज और समान लोक व्यवहार पर दे रहे हैं।
(ताकत/झुकाव/बल)
10. इनके अज्ञान का कोई नहीं है। (आरंभ/शुरुआत/अंत)

1. दोहे : बिहारी

—डॉ. दिनेश गुप्ता

मुक्त शिक्षा विद्यालय

कवि-परिचय

बिहारी का जन्म ग्वालियर के माथुर चौबे वंश में 1595 ई. के आस-पास हुआ था। उनके पिता का नाम केशवराय था। बिहारी का विवाह मथुरा के माथुर चौबे लोगों के घराने में हुआ था। विवाह के बाद बिहारी अपनी ससुराल में रहने लगे। 1618 में नरहरिदास के यहाँ बिहारी का परिचय शाहजहाँ बादशाह से हुआ और वह बादशाह के साथ आगरा चले गये तथा वहीं रहने लगे। बादशाह के यहाँ बिहारी का परिचय राजस्थान के राजाओं से हुआ। 1635 ई. में बिहारी आमेर-नरेश जयसिंह से मिलने गये। उस समय जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में पड़कर अपना सारा कामकाज छोड़ बैठे थे। बड़ी रानी के कहने पर बिहारी ने निम्नलिखित दोहा—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।

अली कली ही सों बैँध्यौ, आगे कौन हवाल।।

लिखकर जयसिंह के पास भेजा। जयसिंह पर उसका प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि वह पुनः राज-काज देखने लगे और उन्होंने बिहारी को अपने दरबार में रख लिया। वहाँ बिहारी ने 713 दोहों वाली सतसई की रचना की। कहा जाता है कि उन्हें प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी इनाम में मिलती थी। सम्भवतः 1664 ई. के आस-पास वह परलोकवासी हुए।

रचनाएँ—बिहारी की कीर्ति का स्तम्भ केवल बिहारी-सतसई ही है। केवल सौ दोहे लिखकर उन्होंने महाकवि बनने का सौभाग्य प्राप्त किया। इससे सिद्ध हो जाता है कि यश प्राप्त करने के लिए अधिक लिखना उतना आवश्यक नहीं जितना उच्चकोटि का लिखना। इन सात सौ दोहों में रस, नायिका-भेद, अलंकार इत्यादि तो भरे ही हैं; धार्मिक तथा नैतिक सूक्तियों की भी इनमें कमी नहीं है और भक्ति साहित्य का भी प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। आशय यह है कि इस पुस्तक के छोटे-से कलेवर में ही बिहारी ने समकालीन भारतीय साहित्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियों का समावेश कर दिया है—1. शृंगार, 2. भक्ति और 3. नीति।

काव्य-सौष्ठव—रीतिकाल में शृंगार, भक्ति और नीति-विषयों पर अनेक कवियों ने बड़ी संख्या में काव्य लिखे हैं, लेकिन बिहारी के बारे में प्रसिद्ध है कि उन्होंने 'गागर में सागर' भर दिया। उन्होंने अपने दोहों में इतना सजग होकर शब्दों का प्रयोग किया है कि एक भी शब्द बदलना कठिन हो जाता है। शब्दों में पूरी शक्ति और बहुत गहरी व्यंजना है। रचना का ऐसा कसाव हिन्दी-साहित्य में बहुत ही कम मिलेगा। कहीं-कहीं एक ही दोहे में पूरी-पूरी कथा आ गई है। बिहारी की निरीक्षण-शक्ति इतनी प्रबल है कि वे

किसी भी स्थिति का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, जिससे उसका बिम्ब पूरी तरह स्पष्ट हो जाए। अलंकारों का प्रयोग इतनी कुशलता से किया है कि देखते ही, बनता है। एक-एक दोहे में कई-कई अलंकार गुँथे पड़े हैं, किंतु विशेषता यह है कि वे अलंकार ऊपर से थोपे हुए नहीं जान पड़ते। स्वाभाविक रूप में ही ही उनका प्रयोग हुआ है। जीवन की किसी परिस्थिति से अलंकार ग्रहण कर लेना इनके बाएँ हाथ का खेल था। गणित, ज्योतिष, शिकार, वैद्यक और दैनिक जीवन की परिस्थितियों के ज्ञान को प्रसंग के अनुसार घटित कर देने की क्षमता बिहारी में है।

मुक्तक काव्य का सौन्दर्य

काव्याचार्यों द्वारा निरूपित काव्य के दो रूप प्रसिद्ध हैं—प्रबन्धकाव्य और मुक्तककाव्य। पूर्वापर सम्बन्धित वर्णनात्मक कथा-तत्त्व से युक्त काव्य, प्रबन्ध कहलाता है। इसके विपरीत पूर्वापर-सम्बन्ध मुक्त, स्वतः सम्पूर्ण अर्थ का द्योतक काव्य मुक्तक काव्य कहा जाता है। प्रबन्धकाव्य में रस-व्यंजना की पूर्ण सामग्री (विभाव, अनुभाव आदि) की अवतारणा सहज संभव होती है जबकि मुक्तक काव्य में उसकी परिकल्पना कवि द्वारा उद्धृत प्रसंग पर निर्भर है। प्रबन्धकाव्य में विस्तार के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है, परन्तु मुक्तक की महत्ता संक्षिप्तातिसंक्षिप्त होने में है। प्रबन्ध काव्य-रचयिता जिस बात को अनेक पद्यों अथवा पूरे एक सर्ग में कहता है उसी बात को मुक्तक काव्यकार एक ही पद्य में प्रस्तुत करके रस-अवतारणा में प्रवृत्त होता है। उसकी सफलता इसी बात पर निर्भर है कि वह कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक गहन भावों का संयोजन कर दे। “गागर में सागर” भरने की यह कला ‘शब्दों के जादूगर’ बिहारी की सतसई में पराकाष्ठा तक दिखाई देती है। 48 मात्राओं वाले छोटे से ‘छोहा’ छन्द में बिहारी ने भाव एवं अर्थ की इतनी गहराई प्रस्तुत की है कि उसे जितनी बार पढ़ा जाए उतनी ही बार एक नूतन आनन्द, अद्भुत काव्यास्वाद और मानसिक तृप्ति का अनुभव होता है।

आचार्य शुक्ल के कथानुसार, ‘जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समास-शक्ति जितनी अधिक होगी उतनी ही वह मुक्तक की रचना में अधिक सफल होगा।’ इससे मुक्तक काव्य की दो कसौटियाँ स्पष्ट हैं। प्रथम-कल्पना की समाहार शक्ति, द्वितीय-भाषा की समास शक्ति। इस दृष्टि से बिहारी-सतसई में निस्सन्देह मुक्तक कला का चरम दिखाई देता है। उदाहरणार्थ: बिहारी का एक प्रसिद्ध दोहा है—

कहत नटत रीझत, मिलत खिलत लजियात।

भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सों बात।।

यहाँ कवि ने केवल बारह शब्दों में एक सम्पूर्ण प्रेम-प्रसंग को समेट लिया है जिसे समझने के लिए कवि के कल्पना-कौशल की थाह लेनी पड़ती है। प्रसंग यह है कि नवविवाहित दम्पति परिवारजनों के मध्य उन्मुक्त प्रेमलाप करने में असमर्थ है। अतः वे नेत्र-संकेतों के माध्यम से अपने-अपने हृदय के भाव एक-दूसरे तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं। दोहों के शब्दों पर क्रमशः ध्यान दीजिए—पहले नायक संकेत द्वारा नायिका से कहीं एकान्त में मिलने का आग्रह करता है परन्तु नायिका संकेत में नहीं कह देती है।

नायिका की इस अनूठी 'नाहीं' पर नायक रीझ उठता है, परन्तु नायिका भरे परिवार में नायक की ऐसी प्रवृत्ति पर खीझ जाती है। अब घर के काम-काज में उसे यहाँ से वहाँ तो जाना ही पड़ता है और कहीं-न-कहीं नायक का सामना भी हो ही जाता है। अतः उसकी खीझ अन्ततः मुस्कान में परिणत हो जाती है, परन्तु तभी परिजनों की उपस्थिति का ध्यान आने पर वह लजा जाती है।

यह शब्दचित्र एक सम्पूर्ण प्रणय-प्रसंग को प्रस्तुत करने में समर्थ है। संक्षिप्तता और सारगर्भिता के साथ-साथ सरस रागात्मकता के सुष्ठु संयोजन ने इसे मुक्तक काव्य की एक अमर विभूति बना दिया है।

इसी प्रकार बिहारी का यह दोहा आपको स्मरण होगा—

**नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सों बैँध्यो, आगे कौन हवाल।।**

इसका शब्दार्थ है—जो भँवरा पराग और मधुर मधु से रहित, एक बिना खिली कली में ही इतना मस्त है, कली के खिलकर फूल बन जाने पर उसकी क्या दशा होगी? किन्तु कवि का अभिप्राय इतना ही नहीं है। वह इस दोहे द्वारा, अपनी नवोद्गा पत्नी के प्रेम में अन्धे हो रहे राजा जयसिंह को तो सावधान करना चाहता है, साथ ही विलासिता में डूबे अन्य कर्तव्य-विमुख व्यक्तियों को सचेत करना भी उनका उद्देश्य है। ऐसे कामी पुरुषों से स्त्रियों को भी सावधान रहने के लिए बिहारी ने लिखा है—

**बहकि न इहिं बहिनापुली, जब तक बार विनास।
बचै न बड़ी सबील हूँ, चील घोंसाव माँस।।**

इस दोहे में कवि द्वारा कल्पित यह प्रसंग छिपा हुआ है—किसी लम्पट पुरुष ने एक सुन्दरी से बहन का-सा नाता जोड़ा जो उसे अपने जैसा ही भोला और सरल समझती है। किन्तु उसकी एक सखी उसे सचेत करती है कि वह इस बहनापे के बहकावे में न आए—नहीं तो एक दिन पछताना पड़ेगा। क्योंकि पर-पुरुष की संगति में अब नहीं तो तब-नारीत्व भ्रष्ट होने का भय बना ही रहेगा। जैसे चील के घोंसले में बड़ी सावधानी से रखा हुआ माँस कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकता। इस प्रकार कवि ने स्वार्थी पुरुषों को चील-जैसा कहकर अपनी सामाजिक चेतना का परिचय देते हुए नारी-मात्र को सजग रहने की जो प्रेरणा इस एक दोहे द्वारा दी है उसका साहस बड़े-बड़े उपदेशक अपने लम्बे भाषणों में भी नहीं कर सकते।

ऊपर के तीनों उदाहरण क्रमशः शृंगार, नीति एवं समाज से सम्बन्धित हैं। ऐसे ही राजनीति, भक्ति, दर्शन, हास्य-सभी विषयों से सम्बन्धित अनेक दोहे बिहारी की समाहार-शक्ति के प्रमाण रूप में उद्धृत किए जा सकते हैं। यहाँ दो और दोहे प्रस्तुत हैं। एक का सम्बन्ध राजनीति से है और दूसरे का भक्ति से—

**दुसह दुराज प्रजान को क्यों न बदैँ दुख-द्वन्द्व।
अधिक अन्धेरो जग करैँ मिल माव रवि चन्द।।**

इस दोहे का सीधा-सा अर्थ तो यह है कि जिस प्रकार अमावस्या की तिथि में सूर्य और चाँद दोनों के मिल जाने से संसार में उजाला होने की बजाएँ अधिक अन्धेरा हो जाता है उसी प्रकार दो राजाओं का राज्य प्रजा के लिए असह्य और दुःख द्वन्द्व बढ़ाने वाला होता है। परन्तु वास्तव में बिहारी ने यहाँ कुछ ही

शब्दों में अपने समय की राजनैतिक अस्थिरता, जनता की दुर्दशा और साहित्यकारों की चिन्ता तथा मजदूरी का बड़ा मार्मिक विवरण दे दिया है। मध्ययुग में एक तो छोटे-छोटे राजे-रजवाड़े-सामन्त और जागीरदार प्रजा को दबाए रहते थे, दूसरे उनके ऊपर मुगल शासकों के अत्याचार, टैक्स आदि से जनता पर दोहरी मार पड़ती थी। इस प्रकार लोग दोहरे शासन से कोई लाभ या सुविधा पाने की बजाय अधिक पिस रहे थे। उस समय इस भीषण स्थिति का यह चित्रण तो केवल पहली पंक्ति में हुआ है जबकि दूसरी पंक्ति में कवि ने प्रकृति के एक अटल नियम तथा ज्योतिष और खगोलशास्त्र के एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त की व्याख्या की है। स्पष्ट है कि इतनी बातों को एक साथ समेटने की क्षमता केवल बिहारी में ही थी।

अब एक भक्ति-संबंधी उदाहरण लीजिए—

दूर भजत प्रभु पीठि दै गुन-विस्तारन काल।

प्रगटत निर्गुन निकट रहि, चंग रंग भूपाल॥

यहाँ बिहारी ने पतंग के दृष्टान्त से निर्गुण भक्ति की व्याख्या की है। जैसे पतंग की डोर (गुण) का विस्तार करने पर वह अधिक-से-अधिक दूर होती चली जाती है किन्तु उस डोर को समेटते ही, या डोर से रहित होते ही वह बिल्कुल निकट जा आती है, इसी प्रकार जितना प्रभु के गुणों का विस्तार किया जाएगा, वे विमुख रहेंगे, किन्तु यदि निर्गुण-निराकार रूप में उनकी उपासना की जाय तो वे निकट ही (हृदय में ही) विद्यमान अनुभव होंगे। इसी बात को एक अन्य रूप में भी कहा जा सकता है कि जो मनुष्य अपने गुणों के अभिमान में मस्त होता है, उसे प्रभु की कृपा नहीं मिल सकती जबकि स्वयं को गुणहीन समझकर दीनतापूर्वक विनय करने वाले भक्त के भगवान् सदा निकट रहते हैं। इस प्रकार जिस बात को भक्तिकाल की सगुण-निर्गुण भक्ति शाखा के सन्त कवियों ने अपने असंख्य पद्यों में समझाने की चेष्टा की है उसे बिहारी ने एक ही दोहे में जाने-पहचाने दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कर दिया है।

सच तो यह है कि बिहारी की इस समाहार-शक्ति ने ही साहित्य-प्रेमियों को बार-बार उनकी प्रशंसा के लिए विवश किया है। इसका प्रमाण यह है कि बिहारी के बाद अनेक कुशल कवियों ने बिहारी के एक-एक दोहे की व्याख्या चार लम्बे चरणों वाले सवैया, दोहे से तिगुने बड़े छन्द, छप्पय, कवित्त तथा कुण्डलियों आदि में भी करने की कोशिश की है। फिर भी वे बिहारी के भावों को भली-भांति स्पष्ट करने में सफल नहीं हो सके। बिहारी की समाहार-शक्ति को यदि संक्षेप में ही स्पष्ट करना हो तो हम रहीम के शब्दों में कह सकते हैं—

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।

ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमट, कूदि चल जाहिं।

अर्थात् जिस प्रकार एक नट छोटे से घेरे में से सिमटकर, कूदकर निकल जाता है उसी प्रकार दोहे के थोड़े से अक्षरों में बड़े विशाल अर्थ सिमटकर समाए रहते हैं। और इसका ज्वलन्त प्रमाण है—‘बिहारी-सतसई’।

भाषा-सौष्टव—हिन्दी की अधिकांश मध्यकालीन, विशेषतः रीतिकालीन सतसइयाँ ब्रजभाषा में रचित हैं। तुलसी, रहीम (अवधी), सूर्यमल्ल (राजस्थानी) और हरिऔध (खड़ीबोली) की सतसइयाँ ही इसका अपवाद कही जा सकती हैं। बिहारी-सतसई ब्रजभाषा-काव्य की अमूल्य निधि है। भाषा की प्रांजलता, शब्दों का विषयानुरूप तथा प्रसंगानुकूल सुष्ठु चयन, पद-विन्यास की निपुणता, लाक्षणिक प्रयोगों की अर्थवत्ता, चित्रोपमता, नाद-योजना, प्रतीकात्मकता एवं बिम्ब-विधान आदि भाषा-सौष्टव के समस्त उपकरणों का बिहारी-सतसई में अद्भुत समन्वित समाहार परिलक्षित होता है।

बिहारी की भाषा के सम्बन्ध में कतिपय विद्वान् समीक्षकों के अभिमत यहाँ उल्लेखनीय हैं...

रामचन्द्र शुक्ल—“बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य-रचना व्यवस्थित है...। ब्रजभाषा के कवियों ने शब्दों को तोड़-मरोड़कर विकृत करने की आदत पाई है...बिहारी की भाषा इस दोष से भी कुछ मुक्त है।”

रामकृष्ण दास—“मुहावरे और उत्प्रेक्षा के तो बिहारीलाल बादशाह थे।”

श्यामसुन्दर दास—“बिहारी ने शब्दों के साथ बलात्कार बहुत कम किया है। व्याकरण के नियमों का व्यक्तिक्रम उनकी रचनाओं में बहुत कम पाया जाता है। कहीं-कहीं पर जो उनके कुछ शब्द अजनबी से लगते हैं वे इस कारण कि उनका प्रयोग बहुत कम होता है।”

वस्तुतः अन्य सभी सतसइयाँ भाषा-सौष्टव की दृष्टि से बिहारी-सतसई से बहुत पीछे हैं। किसी बिहारी प्रशंसक की यह उक्ति अतिशयोक्ति या अत्युक्ति नहीं, अपितु स्वाभावोक्ति ही है—

ब्रज भाषा बरनी सबै, कविवर बुद्धि विशाल।

सब की भूषण सतसई, रची बिहारी लाल।।

‘बिहारी सतसई’ की भाषा की कसावट और शब्दों की जादूगरी का संकेत पीछे ‘मुक्तक काव्य-प्रसंग’ में किया जा चुका है। यहाँ एक ऐसा उदाहरण प्रमुख है जिसमें चित्रोपमता, नाद-सौंदर्य, शब्द-सौष्टव, अलंकार-विधान सब कुछ एक साथ समाहित हो गया है—

रनित भृंग-घंटावली, झरित दान-मधु नीरा।

मन्द मन्द आवत चल्यो, कुंजर कुंज-समीर।।

इस दोहे की व्याख्या अपेक्षित नहीं, प्रत्येक शब्द स्वतः बोल रहा है। कुंज में प्रवाहित मन्द समीर और मदमस्त गज का साम्य शब्दों में ही नहीं, कर्ण, नेत्र, मस्तिष्क और हृदय तक में साक्षात् हो उठता है।

‘बिहारी-सतसई’ की भाषा का सौन्दर्य उसके मार्दव तथा सुव्यवस्थित गठन में निहित है। काव्य-शिल्प के एक-एक उपकरण का विवेचन करने के लिए इसके सभी दोहे उद्धृत किए जा सकते हैं जिसका यहाँ अवसर नहीं है। फिर भी एक-एक उदाहरण से उनकी कुछ बानगी देखी जा सकती है—

चित्रोपमता — चमचमात चंचल नयन, बिचु घूँघट पट झीन।

मानहु सुरसरिता विमल, छल उछरत जुगु मीन।।

- नाद-सौन्दर्य – रस सिंगार-मंजु किए कंजु भंजु नैन।
अंजु रंजु हूँ बिना, खंजु गंजु नैन॥
- अप्रस्तुत-योजना – चिलत चिकनाई चटक सों, लफति सटक लौं आई।
नारि सलोनी साँवरी, नागिन लौं डसि जाइ॥
- बिम्ब-विधान – सटपटाती सी ससिमुखी, मुख घूँघट पट ढाँकि।
पावक झर-सी झमकि कै, गई झरोखे झाँकि॥

छन्द-विधान—छन्द की दृष्टि से हिन्दी का सतसई-साहित्य 'दोहा मुक्तक' की कोटि में रखा जा सकता है। दोहा छन्द में 48 मात्राएँ होती हैं। यदि दोहे के सभी वर्ण लघु हों तो उसमें अधिक-से-अधिक 48 वर्ण हो सकते हैं। और यदि सभी वर्ण गुरु हों तो कम-से-कम 24 वर्ण हो सकते हैं। किन्तु 13, 11 मात्राओं पर यति के नियमानुसार और अन्त में गुरु-लघु का क्रम अनिवार्य होने के कारण दोहे में सभी लघु या सभी गुरु वर्ण रखने सम्भव नहीं। उसमें कम-से-कम चार लघु (तथा शेष सभी गुरु) या कम-से-कम दो गुरु (तथा शेष सभी लघु) होने आवश्यक हैं। इस तरह दोहा छन्द का विस्तार 22 गुरु और 4 लघु से लेकर 2 गुरु और 44 लघु तक हो सकता है जिसके अनुसार उसके 21 भेद किए जाते हैं। इन भेदों के नाम गुरु-लघु-संख्या-क्रम के अनुसार छन्द-ग्रन्थों में विस्तार से विवेचित हैं। यहाँ उन्हें उद्धृत करना अपेक्षित नहीं। द्रष्टव्य यह है कि दोहे के कुल 21 भेदों में से अन्य सभी सतसईकार 8 भेदों से अधिक का प्रयोग नहीं कर पाए। यहाँ तक कि कबीर और तुलसी जैसे दोहा-महारथी भी 10 भेदों के प्रयोग से आगे नहीं बढ़ पाए। हाँ, आचार्य अमीरदास की 'ब्रजराज विलास सतसई' में दोहे के 16 भेद प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु यह गौरव केवल 'बिहारी-सतसई' को प्राप्त है कि उसमें 21 भेदों में से 19 भेदों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट है कि 'बिहारी-सतसई' का रचयिता केवल शब्दों को ही नहीं, वर्णों और मात्राओं तक को अपनी लेखनी की नोंक पर नचाने में सिद्ध हुआ है।

बिहारी बहुज्ञ कवि थे। लोक और शास्त्र का व्यापक अनुभव उनको अन्य रीतिकालिन कवियों से पृथक्-रीति से कहीं बढ़ और मुक्त व्यक्तित्व वाला सिद्ध करता है। उनकी सतसई में धर्म, दर्शन, गणित, ज्योतिष, वैद्यक, राजनीति, प्रेम, विलास, रस, नायक-नायिका-भेद आदि का बहुमुखी चित्रण हुआ है। किसी एक विषय या भाव से बँधे न रहने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि कभी वे निर्गुण का गुणगान करते हैं, कभी सगुण के पक्ष में दलील देते हैं, कभी बड़ों पर किसी का वश चलने की बात करते हैं, तो कभी अपने आश्रयदाता को उपदेश और कभी मार्ग-निर्देश देते दीखते हैं। वैद्य, भिखारी, राजा, गँवार, बड़ों के छोटेपन, छोटों के बड़प्पन आदि के विषय में उन्होंने जो सूक्तियाँ लिखी हैं, वे उनके लोक-व्यवहार-ज्ञान को सूचित करती हैं। ऐसे प्रसंगों में उनके दोहे उनकी व्यंग्य-शक्ति दर्शाते हैं। इन सभी विषयों पर बिहारी ने जो कुछ भी लिखा है, वह उनके आसपास के वातावरण, समाज और मान्यताओं से उत्पन्न हुआ है। लोकजीवन के इन विविध चित्रों के साथ-साथ बिहारी ने काव्यशास्त्र और कामशास्त्र की बातें भी अपनी सतसई में रखी हैं। इससे उनका शास्त्र-ज्ञान सूचित होता है।

बिहारी की सतसई ब्रजभाषा में लिखित है। उनकी ब्रजभाषा बोली-वर्ग की नहीं, साहित्यिक है। साहित्यिक होते हुए भी उस पर कहीं-कहीं क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव भी पड़ता दीखता है क्रिया के 'लीन', 'कीन', 'दीन' आदि रूप तुक की रक्षा के लिए प्रयोग किए गये हैं। उनकी ब्रजभाषा में बुंदेलखंडी शब्दों और प्रयोगों के लिए उनका बुंदेलखंड-वास उत्तरदायी है। 'करीब', 'पायबी' आदि ऐसे ही शब्द हैं। इन बोली-प्रभावों के होने से बिहारी की ब्रजभाषा विकृत नहीं हुई है, उसका शब्दकोश बढ़ा ही है। बिहारी की भाषा चुस्त और व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है, भावों को समग्र रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। मुहावरों, सांकेतिक शब्दों और सुन्दर पदावली के कारण बिहारी भाषा के कुशल प्रयोक्ता के रूप में विख्यात हो गये हैं। चुस्त ब्रजभाषा और सामाजिक दोहा के उपयोग के कारण ही 'बिहारी सतसई' के बारे में यह उक्ति प्रचलित हुई है—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीरा।
देखन में छोटे लगे, घाव करें गंभीर।।

कवि का महत्त्व और हिन्दी साहित्य में योगदान

बिहारी कतिपय उन इने-गिने कवियों में हैं जो स्थायी यश के अधिकारी बन गये हैं। मध्यकाल के कवियों में तुलसी और सूर को छोड़कर इतनी अधिक प्रतिष्ठा शायद ही किसी कवि ने प्राप्त की हो। 'रामचरितमानस' को छोड़कर इस काल का शायद कोई और ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' की तरह नहीं अपनाया गया। एक दृष्टि से तो बिहारी सतसई, 'रामचरितमानस' से भी आगे बढ़ जाती है। यदि केवल मध्यकाल की ही टीकाओं को लिया जाए, तो रामचरितमानस पर भी उतनी टीकाएँ नहीं लिखी गई, जितनी बिहारी सतसई पर। किसी ने दोहों में कुण्डलियाँ लगाई, किसी ने कवित्त बनाए और किसी ने सबैया छन्दों से दोहों की व्याख्या की। संस्कृत के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करने की परम्परा रही है, किन्तु यह सौभाग्य 'बिहारी सतसई' को प्राप्त हुआ कि उसकी एक नहीं, अनेक व्याख्याएँ संस्कृत में की गईं। बिहारी सतसई का संस्कृत के आर्या छन्द में भी अनुवाद किया गया। आधुनिक काल में भी बिहारी पर जितना कार्य हुआ है, उतना मध्यकाल के बहुत कम कवियों पर किया गया है। आशय यह है कि केवल 700 दोहे लिखकर बिहारी ने एक पूरा साहित्य तैयार कर दिया है। साहित्य-जगत में बिहारी जैसा महत्त्वपूर्ण स्थान बहुत कम कवियों को प्राप्त हुआ है और हिन्दी-साहित्य की समृद्धि में उनका जो योगदान है, उसके लिए हिन्दी-साहित्य-जगत उनका सदा आभारी रहेगा।

प्रतिपाद्य

शृंगार—रीतियुगीन रससिद्ध कवियों में बिहारी का स्थान सबसे ऊँचा है। उन्होंने सामान्य जीवन को बहुत सूक्ष्म दृष्टि से जाँचा-परखा था। आश्रयदाता जयसिंह के दरबार में रहकर एक ओर तो उन्होंने राजदरबार की अपेक्षाओं को अपने दोहों के द्वारा पूरा करने का प्रयत्न किया था और दूसरी ओर सामान्य लोक जीवन में भी गहरी पैठ का संकेत दिया था। यह बात अलग है कि आम आदमी के सामान्य जीवन-व्यवहार का

चित्रण करने में उनका मन नहीं रमा। हाँ, जहाँ, कहीं जन सामान्य के क्रिया-कलाप उनके काव्य का विषय बने हैं। वहाँ भी उनका ध्यान चमत्कारप्रधान और व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति की ओर अधिक रहा।

रीतिकाव्य की शृंगार प्रधानता में बिहारी का योगदान बहुत अधिक है। उनके दोहों में चित्रित नायक-नायिका अथवा प्रेमी-प्रेमिका अत्यन्त चतुर और प्रौढ़ हैं। उन्हें किसी भी परिस्थिति में स्वार्थ पूर्ति करने की सारी विद्याओं का ज्ञान है। चाहे परिवार जनों के साथ बैठे राधा-कृष्ण हों या गाय चराने की ग्रामीण जीवन-पद्धति में व्यस्त ग्वाल-ग्वालिन रूप में राधा और कृष्ण की चतुराई हो। उनमें प्रेम की सहज, स्वच्छ, व्यंजनात्मक और आन्तरिक विशेषताओं की कमी नहीं है। यह कार्य भक्त कवियों ने भी बहुत किया है किन्तु वहाँ इन आलम्बन-आश्रय (प्रेमी-प्रेमिका) पर भक्ति-भाव की प्रधानता मिलती है। किन्तु रीतिकाल में विशुद्ध भौतिक प्रेम-भाव ने इनके स्वरूप को अधिक प्रसार प्रदान किया है।

शृंगारप्रधान छंदों के प्रतिपाद्य में भाव प्रेरित क्रियाकलाप विशेष महत्त्व रखता है। राधा द्वारा कृष्ण की बाँसुरी छिपा लेना केवल प्रेम की अंतरंग बातचीत की प्रेरणा का फल था। परन्तु बात हुई भी तो केवल बाँसुरी माँगना और मना कर देने की औपचारिकता की पूर्ति करते हुए। इसी प्रकार अपने प्रिय को बार-बार निहारने के काम में व्यस्त प्रेमिका अपने नेत्रों की उच्छृंखलता तथा अपनी परवशता की व्यंजना बहुत चतुराई से करती है। प्रिय को देखने में लज्जा नहीं होनी चाहिए—इस सहज तथ्य को बिहारी ने लाक्षणिक शैली में व्यक्त किया है। ध्यान देने की बात तो यह है कि रीतियुगीन जीवन-व्यवहार में नायिकाएँ अपने प्रिय से मिलने के लिए उपयुक्त स्थान और समय का संकेत भी देने में नहीं हिचकिचाती। ‘घाम घरीक निवारिए’ जैसा दोहा एक ओर प्रौढ़ प्रेमी-प्रेमिकाओं का संकेत करता है, तो दूसरी ओर स्नेह भाव की गहराई और दबाव को बताता है वहीं तीसरी ओर समाज की कपट-पूर्ण ईर्ष्यालु आँखों से दूर हटाना चाहता है।

शृंगार विषयक दोहों में नायक-नायिका के शारीरिक रूप सौन्दर्य का वर्णन भी विशेष महत्त्व रखता है। इस संदर्भ में रीतिकवियों ने नारी के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन बहुत विस्तार से किया है। बिहारी भी इसका अपवाद नहीं है। नारी की देह की चमक इतनी अधिक है कि दीपक आदि के बुझा देने पर भी घर में अंधेरा नहीं होता। क्योंकि हीरों के समान चमचमाता हुआ नायिका का शरीर घर में उजाला किए हुए है। इसी प्रकार कृष्ण की रूप माधुरी की विलक्षणता यह है कि हृदय में छिपी होने पर भी संसार में प्रतिबिम्बित रहती है। एक अन्य दोहे में नारी में मछली जैसे दो नेत्र घूँघट के भीतर से भी अपनी चंचल उछल-कूद को नहीं छोड़ पाते। इन छंदों में यद्यपि अतिशयोक्ति और चमत्कार की प्रधानता है तथापि कल्पना का संयमित उपयोग प्रेमी-युगल की भावप्रवणता को सहज और चतुराई पूर्ण शैली में अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखता है।

नीति—रीतिकाव्य में शृंगारिकता के साथ-साथ नीतिगत कथनों का भी विशेष स्थान है। समाज-नीति, नागरिक-व्यवहार और जन-सामान्य की लोकरीति आदि का चित्रण ‘बिहारी सतसई’ की एक अन्य विशेषता है। इसी विषयवस्तु के छंदों से तत्कालीन लोक संस्कृति और लोक व्यवहार तथा सामाजिक नीति की व्यंजना भली-भाँति हो जाती है।

इस विषयवस्तु के छंदों में बिहारी ने स्पष्ट लिखा है कि आत्मसंतोष और धैर्यपूर्ण जीवन-संचालन व्यक्ति की सबसे बड़ी उपलब्धि है। ऐसा संतोषी व्यक्ति सुख और दुख के अवसर पर विचलित नहीं होता। बल्कि इसे अपने कर्म का फल तथा ईश्वर का दान समझकर साहसपूर्ण सहन करता है। बिहारी जानते थे कि सुख में आदमी अहंकारी होकर परमात्मा को भी भुला देता है पर दुख भोगने पर उतावला हो जाता है और ईश्वर तक को कोसने लगता है।

दूसरी विशेषता यह है कि गुणहीन तथा सामर्थ्यहीन व्यक्तियों के निर्णय और प्रचार-प्रसार से किसी सामर्थ्यवान गुणी व्यक्ति की कुछ भी हानि नहीं होती। चाहे गंध की अनुभवहीनता वाला पीनस-रोगी हो या अरक के पेड़ को सूर्य का दर्जा देने वाला कोई मूर्ख ही क्यों न हो। बिहारी का प्रतिपाद्य है कि अनर्गल प्रलाप करने वालों की परवाह हमें नहीं करनी चाहिए। बल्कि वास्तविकता को पहचानने की कोशिश करनी चाहिए। स्वार्थी और लोभी वृत्ति के कारण व्यक्ति विवेक शून्य भी हो जाता है। उसके द्वारा छोटे-बड़े का अन्तर भी नहीं किया जाता। ऐसे व्यक्तियों को लताड़ता हुआ कवि कहता है कि हमें स्वार्थ और संकीर्णताओं से बाहर निकलना चाहिए क्योंकि गुणों का सही मूल्यांकन करने से ही कार्य सिद्ध होता है।

जो लोग गुणहीन, असामर्थ्यवान और अविवेकी होते हैं वे झूठे घमण्ड के कारण 'थोथा चना बाजे घना' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए यह समझते हैं कि उन्हीं के द्वारा समाज का भला होता है। जबकि ऐसा नहीं है। चूहे के शरीर की चमड़ी से बड़े-बड़े नगाड़ों को नहीं मढ़ा जा सकता। उसके लिए तो बड़े-बड़े चमड़े की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर यह भी सच है कि जो नीच वृत्ति का व्यक्ति होता है वह नीचता कभी नहीं छोड़ पाता। साथ ही साथ यह भी सच है कि जो व्यक्ति अपने हृदय में उदात्त भावनाएँ लाता है, उदार होकर सोचता है, विनम्र स्वभाव से दूसरों से व्यवहार करता है वास्तव में उसी में बड़प्पन होता है। उसके महत्त्व को सारा संसार महसूस करता है।

इस सबसे भिन्न बिहारी ने दुनियादारी की एक अन्य सच्चाई को भी उद्घाटित करते हुए लिखा है कि प्रायः भले को भला-भला कहकर उपेक्षित किया जाता है। कोई भी उसे महत्त्व नहीं देता जबकि बुरे, षड्यंत्रकारी, कपटी और हानिकर व्यक्ति को सब अपने पास बुलाकर उसका स्वागत-सम्मान करते हैं ताकि वह ज्यादा हानि न पहुँचा सके। जैसे हमेशा बुरे ग्रह-नक्षत्रों को ही सदैव पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा आदि उपायों द्वारा पूरे सम्मान के साथ अनुकूल बनाने की कोशिश की जाती है। कवि की दूरदर्शिता समाज की इन खोखली मान्यताओं और अविवेकपूर्ण जीवन-दृष्टि का पर्दाफाश करने की पूरी क्षमता रखती है। इन नीतिपूर्ण दोहों के प्रतिपाद्य से उस युग की बनावटी, स्वार्थी, संकीर्ण और असामाजिक तथा अव्यावहारिक जीवन-व्यवस्था की व्यंजना भी हो जाती है। बिहारी इन सबके विरोधी थे।

भक्ति—रीतिकान्त में शृंगार और नीतिपरक छंदों के अतिरिक्त कभी-कभी भक्तिभाव का प्रदर्शन भी मिलता है। रीतिकवि भी सामान्य प्राणी थे इसलिए भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न शृंगारिक वातावरण से अलग हटकर कभी-कभी आत्मिक और आध्यात्मिक उत्थान के विषय में भी सोचते होंगे। इसी क्रम में उनके काव्य में भक्तिकाव्य के दर्शन यदा-कदा हो जाते हैं। सच ताब तो यह है कि शृंगार, नीति, भक्ति

और वीरभाव के सन्तुलित अध्ययन के आधार पर रीतिकाव्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। भक्तिभाव के छंदों में बिहारी की अत्यन्त उदार, भाव-विभोर और एकनिष्ठा को अभिव्यंजना मिलती है। हाँ, उनकी वर्णन-शैली युग की चमत्कारप्रधान प्रवृत्ति के अनुरूप व्यंजनात्मक भाषा-सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

कृष्ण और राम ने इस पृथ्वी पर अवतार लेकर अनेक अधम और दीनहीनों का उद्धार किया था। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कवि प्रगल्भतापूर्ण शैली में कहता है कि हे ईश्वर! आज तक जितने हीन-दीन प्राणियों का उद्धार तुमने किया वे सब तो तुच्छ थे। उनसे तुम्हें पतितपावन का जो यश मिला वह झूठा था। इसलिए तुम्हें ज्यादा इतराने और घमण्ड करने की आवश्यकता नहीं है। अपितु मुझ जैसे दीन-हीन व्यक्ति का उद्धार करने पर ही तुम्हें वास्तव में यश मिल सकेगा। इसी प्रकार अपने आराध्य के कलियुगी दानियों को समान चित्रित करके उनके सहज स्वभाव का आह्वान करना चाहता है। ईश्वर का स्वभाव है कि किसी भी सामान्य गुण वाले दीन-हीन भक्त का वे शीघ्र ही उद्धार करने दौड़ते थे किन्तु आजकल के दिखावटी दानियों के समान उन्हें भी भक्त के अब बड़े-बड़े गुण नजर नहीं आते। इन छंदों में कविवर बिहारी ने एक ओर परमात्मा की स्वाभाविक विशेषताओं का जिक्र किया है वहाँ दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक यथार्थ के द्वारा संकीर्णता, स्वार्थ, प्रदर्शनशीलता जैसी झूठी और तुच्छ वृत्ति का संकेत भी दिया है। उसका मानना है कि ईश्वर पर भी आज के भौतिक समाज का प्रभाव पड़ गया है।

भक्तिपरक दोहों के द्वारा कवि यह भी प्रतिपादित करना चाहता है कि भक्ति के लिए एकनिष्ठा बहुत जरूरी है। सांसारिक चकाचौंध के कारण जीव के निष्ठा भाव में कमी आती जा रही है जो अच्छी बात नहीं है। इसलिए कवि का विचार है कि सांसारिक सुख-सुविधाओं का संग्रह, करोड़ों की धनराशि एकत्रित करने की होड़ में वह नहीं फँसेगा बल्कि सबसे श्रेष्ठ और स्थायी सम्पत्ति के आधार पर कृष्ण को अपना सर्वस्व सौंप देगा, वही उसके सांसारिक कष्ट क्लेशों का हरण करके आध्यात्मिक सम्पत्ति प्रदान करेंगे। इसी प्रकार बिहारी दुनियादारी में फँसे कर्मकाण्डी भक्तों से भिन्न अपनी इंद्रियों की एकाग्रता और मन की सच्चाई को ईश्वर प्राप्ति का साधन बतलाता है। ध्यान देने की बात यह है कि भक्तिभाव के उद्घाटन में वह कृष्ण और राम के अवतारों का एक साथ स्मरण करता है। यह उनकी सर्वांगीण और उदार भक्तिपूर्ण दृष्टि का प्रमाण है। बिहारी के भक्तिपरक छंदों की इस संतुलित और अनौपचारिक स्वच्छ दृष्टि का महत्त्व समझना चाहिए।

व्याख्या भाग

1. बहकेनैन।।

शब्दार्थ : बहके = परवश हुए। छवि-छाके = छवि रूपी मदिरा पीकर तृप्त हुए। ठौर-कुठौर = उचित-अनुचित। छिन = क्षण।

प्रसंग : प्रस्तुत छंद 'बिहारी रीतिकाव्य' से अवतरित है। बिहारी ने अपने जीवन में अनेक छंद लिखे जो भक्ति, नीति और शृंगार पर आधारित हैं। नायिका पूर्वारागिणी है। प्रेमी को निरंतर देखने की उसकी

अभिलाषा बनी रहती है। नायिका की ऐसी दशा देखकर उसकी सखी उसे समझाती है कि इस तरह बेचैन होना ठीक नहीं है। इस पर नायिका उत्तर देते हुए कहती है—

व्याख्या : हे सखी! ये नेत्र मान-मर्यादा, लज्जा रूपी नियम को नहीं मानते हैं, पर जब नायक समीप होता है तो इनसे देखते नहीं बनता। नायक जब दृष्टि से ओझल हो जाता है, तो मन व्याकुल हो जाता है। भाव यह है कि ये नेत्र तो उस नायक के रूप की मदिरा का रसपान करके छूक गए हैं। सखी मुझे इस बात का आभास ही नहीं रहता कि क्या उचित है और क्या अनुचित। नायक को देखकर ये अनायास ही बहक जाते हैं। ये क्षण में किसी और प्रकार के हो जाते हैं, तो दूसरे ही क्षण किसी और प्रकार के।

विशेष : 1. कवि बिहारी ने इस दोहे में नायिका की बेचौनी को दिखाया है।

2. ब्रजभाषा का प्रयोग है।

3. भेदकतिशयोक्ति और मानवीकरण अलंकार है।

4. माधुर्य गुण का वर्णन किया गया है।

2. जोग-जुगति नैन।।

शब्दार्थ : जोग-जुगति = योग-युक्ति। महामुनि = महायोगी, मुनिश्रेष्ठ (कामदेव रूपी महामुनि)। प्रिय = प्रेमी, परमात्मा। काननु = वन, कान। नेत्र = नेत्र या दृढ़ निश्चय रखने वाला।

प्रसंग : नवयौवना मुग्धा नायिका में यौवन आ जाने से उसके बड़े नेत्र दीर्घ होते हुए कानों तक पहुँच जाते हैं। उसके सुंदर नेत्र को देखकर सखियाँ, उसकी प्रशंसा करती हुई, उसका उत्साहवर्धन कर रही हैं।

व्याख्या : नवयौवना मुग्धा नायिका अपने यौवन की ओर बढ़ रही है। नायिका के सुंदर नेत्र कानों तक पहुँच रहे हैं, मानो कामदेव का संदेश नवयौवना मुग्धा को मिल गया है। वह (नायिका) प्रियतम से मिलने की प्रतीक्षा में वन में निवास कर योग की सारी युक्तियाँ मानो सीख गई हो। भाव यह है कि जिस प्रकार किसी महायोगी से योग की समस्त शिक्षा लेकर कोई भी कानन-सेवी ब्रह्म में एकाकार हो जाता है, उसी प्रकार मानो नायिका के विशाल नेत्र कामदेव रूपी महामुनि से संयोग की समस्त शिक्षा लेकर कानों के समीप जाकर प्रियतम से अलग नहीं होना चाहते। प्रियतम के निकट रहकर उन्हें बार-बार देखना चाहती है।

विशेष : 1. इस छंद में नायिका मुग्धा है जिसकी वयःसंधि की ओर संकेत किया गया है।

2. ब्रजभाषा का प्रयोग किया है।

3. 'जोग', 'प्रिय-अद्धतता', 'काननु', 'सेवत', 'नैन' में श्लेष अलंकार है।

4. माधुर्य, प्रसाद गुण का वर्णन किया है।

5. व्यंजना शब्दशक्ति का प्रयोग किया है ।

3. कीनै.....लौनु।।

शब्दार्थ : जतन = प्रयास। काठै = अलग करना। भो = हो गया। मन-मोहन = मन को मोहनेवाला।
लौनु = लावण्यमय।

प्रसंग : नवयौवना नायिका का मन नायक के प्रति आकृष्ट है। नायक के प्रेम में नायिका का मन कहीं नहीं लगता है। कविवर बिहारी ने नायिका के विचलित मन की दशा का चित्रण किया है। सखियाँ नायिका को समझाने का प्रयास करती हैं। नायिका को नायक के अलावा कुछ स्मरण नहीं रहता।

व्याख्या : नायिका अपनी सखी से कहती है कि मोहन का मनमोहक रूप मेरे मन में इस तरह रम गया है जिस तरह पानी में नमक मिल (घुल) जाता है। भाव यह है कि मोहन का लावण्यमय रूप मेरे मन में बस गया है, जिसे चाहकर भी अलग नहीं किया जा सकता है। हे सखी! अब कोई कितना भी समझाए पर मेरे मन में मोहन का समाया रूप निकल नहीं सकता।

विशेष : 1. विरह-वेदना का रूप-स्वरूप व्यक्त किया गया है।

2. उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

3. माधुर्य-गुण का प्रयोग किया है।

4. लक्षणा शब्द-शक्ति का प्रयोग किया है।

4. जम-करि.....गाउ।।

शब्दार्थ : जम = यमराज, नरक के अधिपति। करि = खूनी हाथी। धरहरि = निश्चय। विषय-तृषा = प्रत्येक इंद्रिय के अलग-अलग विषय। नृसिंह = भगवान।

प्रसंग : इस छंद में बिहारी ने जीव के मन की व्यथा को अभिव्यक्त किया है। जीवन में तुने किसी के बारे में सोचा-समझा नहीं। अब अंतिम क्षणों में भगवान के प्रति अपनी आस्था को व्यक्त कर रहा है।

व्याख्या : हे जीव! तू यम रूपी हाथी के समक्ष पड़ा हुआ है, तू इस बात को निश्चयपूर्वक समझ ले। जिस विषय-तृष्णा (भोग-विलास) में तूने अपना जीवन जिया है, उसे अब तो छोड़ दे। ईश्वर के प्रति अपनी आस्था का विश्वासपूर्वक गुण-गान कर। भाव यह है कि जिस प्रकार हाथी अपनी मस्ती में चलता हुआ कितनों को मसलता-कुचलता है। उससे जीतना मुश्किल है, केवल सिंह ही उस पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर सकता है। उसी प्रकार यमराज किसी को नहीं छोड़ता, सबका अंत कर देता है। भगवान की शरण में जाकर ही जीव इन सब से छुटकारा पा सकता है।

विशेष : 1. कविवर बिहारी ने मायारूपी संसार का चित्रण किया है। जीव इस मायाजाल में फँसा रहता है।

2. रूपक, श्लेष और अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया है।

3. प्रसाद एवं माधुर्य गुण का प्रयोग किया है।

4. शांत एवं भय रस का प्रयोग किया है।

प्रश्नों की जाँच स्वयं कीजिए—

प्रश्न 1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पर 'सही' या 'गलत' का निशान लगाइए—

1. कवि बिहारी ने नायिका की वेदना को प्रस्तुत किया है [.....]
2. नायिका की दृष्टि से कौन ओझल हो जाता है [.....]
3. कामदेव ने नायिका को क्या संदेश दिया है [.....]
4. नायिका के माध्यम से क्या कहना चाहते हैं [.....]

प्रश्न 2. निम्नलिखित शब्दों के सही अर्थ बताइए—

छिन..... (क्षण/रण)

लौनू..... (लावण्यमय/मावन्मय)

नृसिंह.....(भगवान/आस्था)

धरहरि.....(निश्चय/प्रबल)

विषय-तृषा(प्रत्येक माया/ प्रत्येक इंद्रिय)

जम.....(यमराज/धर्मराज)

5. लखि.....रतिराजु॥

शब्दार्थ : लोने = लावण्यमय। लोइननु = लोचनों। कोइनु = कोयों से, आँख की पुतली के दोनों ओर के श्वेत भाग कोये कहलाते हैं। गरीबु (गरीब) = निर्धन। निवाजिबौ = कृपया करनी है (फारसी)। तुठ्यौ = संतुष्ट हुआ है। रतिराजु = कामदेव। लेखि-होइ = दिखाई पड़ता है।

प्रसंग : नायिका (अनैतिक रूप से संबंध स्थापित करने वाली स्त्री नायिका) की आँखों में चमक का आभास होने से सखी उसका उपहास करती हुए कहती है।

व्याख्या : हे सखि! आज तेरे लावण्यमय नेत्रों के कोयों के द्वारा (नायिका का परपुरुष के संबंध होने का भाव) समझ नहीं आ रहा है, ज्ञात नहीं हो पा रहा, आज किस गरीब कि किस्मत चमकने वाली है, किस पर आज कामदेव प्रसन्न होने वाले हैं। भाव यह है कि नायिका के नेत्र आज विशेष आभा लिए हुए हैं। उसने अपने नेत्रों में काजल आदि द्वारा बाह्य और कमाधिक्य से आंतरिक रूप की सजावट की है। नायिका की सखी का मानना है कि नायिका आज इतनी साज-सज्जा किए हुए है। किससे मिलने जा रही है, वह कौन है? किसी गरीब पर कामदेव की कृपा होने वाली है। यह सोचकर अपनी नायिका के साथ हास-परिहास करते नजर आती है।

विशेष : 1. सखी अपनी सहेली नायिका से उसके निजी संबंधों के विषय में पूछती हैं और उसका मजाक उड़ाती है।

2. कविवर बिहारी ने दोहे में मुक्तक भाव का रूप-स्वरूप प्रस्तुत किया है।

3. काकुवक्रोक्ति अलंकार का प्रयोग किया है।
4. माधुर्य और प्रसाद गुण का प्रयोग किया है।

6. मैं तोसों.....लाइ।।

शब्दार्थ : कैवा = कई बार, कितनी बार। जिन = मत। पथ्याइ = विश्वास करना। लगालगी = लगना, मिलना। लाइ = लाग, घात।

प्रसंग : पूर्वानुरागिणी नायिका नायक से न मिलने के कारण विचलित हो जाती है। नायिका की सखी उसे समझाती हुई कहती है।

व्याख्या : हे सखि! मैंने तुझे कई बार कहा और समझाया है कि इन लोचनों का यकीन मत करा। इन नेत्रों (लोचनों) ने ही नायक से मिल-मिलकर तेरे हृदय का यह हाल किया है। तेरे मन में अविश्वास की आग को हवा दी है। भाव यह है कि मैंने कितनी बार तुझे बताया है कि नेत्रों का कभी-भी विश्वास मत करना। ये कभी-भी धोखा दे सकते हैं। तुझे अपने आप पर बहुत विश्वास था कि नेत्र कभी मेरे हृदय के साथ गलत नहीं होने देंगे, पर ऐसा हुआ नहीं।

विशेष : 1. प्रेमी-प्रेमिका के मन की वेदना को कवि बिहारी ने दिखाने का प्रयास किया है।

2. ब्रजभाषा का प्रयोग किया है।
3. अदभूत रस का प्रयोग किया है।
4. असंगति अलंकार का प्रयोग किया है।

7. बारनैन।।

शब्दार्थ : बार = बलयुक्त। नैन = कामदेव मदन। हरिनी = मृगी, मादा हिरन।

प्रसंग : नायिका की सखी अथवा दूती नायिका के नेत्रों की प्रशंसा करते हुए नायक को बेचैन करना चाहती है—

व्याख्या : हे नायक! मेरी सखी के नयन हिरणी के नेत्रों से भी सुंदर और आकर्षक है। इन्होंने कामदेव के बाणों को बरबस जीत लिया है। इससे ज्यादा और क्या कहूँ, मैंने ऐसे नयन किसी और के देखे नहीं। भाव यह है कि मेरी सखी (नायिका) कि आँखें हिरणी के नयनों के भी सुंदर हैं। इन नेत्रों ने कामदेव के बलिष्ठ बाणों को भी नहीं छोड़ा है, इन नेत्रों ने बलपूर्वक कामदेव के बाणों को भी जीत लिया है। नायिका की आँखें सुंदर हैं। मैंने इतनी आकर्षक आँखें किसी की भी कभी-भी नहीं देखीं।

विशेष : 1. नायिका की आँखों की अनुपम सुंदरता का चित्रण किया है।

2. सरल, सुबोध ब्रजभाषा का रूप अभिव्यक्त किया है।
3. व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग किया है।
4. शृंगार अलंकार का प्रयोग किया है।

प्रश्नों की स्वयं जाँच करना—

प्रश्न 1. निम्नलिखित कथनों का 'सही' या 'गलत' पर निशान लगाइए—

1. बिहारी ने अपने दोहों में वियोग-पक्ष का चित्रण अधिक किया है। (सही/गलत)
2. बिहारी ने काव्य में लक्षण ग्रंथ का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। (सही/गलत)
3. दोहों के आधार पर स्पष्ट होता है—'मुहावरे और उत्प्रेक्षा के तो बिहारी बादशाह' थे।

(सही/गलत)

प्रश्न 2. कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए—

1. कवि ने नायिका के नेत्र..... समान बताए है। (हरिनी/तीखी)
2. कवि बिहारी ने नायिका का संबंध से बताया है। (नायक/परनायक)

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्रश्न 1.

1. कविवर बिहारी के काव्य का साहित्यिक परिचय दीजिए।
2. 'बिहारी एक सफल मुक्तककार है' स्पष्ट कीजिए।
3. कवि बिहारी के दोहे किन-किन विषयों पर आधारित हैं? नाम बताइए।
4. बिहारी के दोहों में 'गागर में सागर भरने की शक्ति है' स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. प्रश्न प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए—

1. बहके सबलखै न।
2. भो मनकौ लौनू।
3. विषय-तृषा.....गुन गाउ।
4. लगालगी करि.....लाई लाइ।

2. कवित्त : घनानंद

—डॉ. सुधीर शर्मा

मुक्त शिक्षा विद्यालय

कवि-परिचय

घनानंद की जीवनगाथा का तानाबाना हिन्दी के अन्य प्राचीन कवियों की भाँति जहाँ-तहाँ के उल्लेखों का संचय करने के बाद बुना गया है। उनका जन्म वि. संवत् 1746 ई. (सन् 1600 के लगभग) दिल्ली में हुआ माना जाता है। वे मुगल बादशाह मोहम्मद शाह के दरबार में मीर मुंशी के पद पर काम करते थे। मोहम्मद शाह राजकाज से अधिक रंगीनमिजाजी में अधिक रुचि लेता था, इसलिए उसके नाम के आगे 'रंगीला' शब्द जोड़ दिया जाता है। उसके दरबार में संगीत-नृत्य का बोलबाला था। उसके दिलबहलाव के लिए सुजान नामक एक सुन्दरी वेश्या थी, जिसके सौंदर्य और नृत्य पर घनानंद रीझे हुए थे। घनानंद स्वयं अच्छे गायक थे। वे ध्रुपद और ख्याल गाया करते थे, जिसके साथ सुजान नृत्य किया करती थी। दरबारियों द्वारा बादशाह के कान भर देने के कारण प्रेमी घनानंद को दरबार से निकाल दिया गया, पर सुजान किसी लाचारीवश उनके साथ नहीं गयी। वे वैराग्य लेकर वृंदावन की ब्रजरज में कृष्णभक्ति का काव्य लिखने लगे, लेकिन वे अपनी सुजान को नहीं भुला पाये, इस कारण कृष्ण के लिए 'सुजान' शब्द अपनी भक्ति-कविता में रखते रहे। अफगानी लुटेरे अहमदशाह अब्दाली के द्वारा दो बार दिल्ली, मथुरा, वृंदावन को रौंदा गया, जिसके पहले आक्रमण में अब्दाली के सैनिकों द्वारा 'जर' माँगने पर 'ब्रजरज' देने के परिणामस्वरूप घनानंद को कल्ल कर दिया गया। वह घटना वि.सं. 1796 में घटित हुई।

घनानंद जाति से कायस्थ थे। वे फारसी और उर्दू के विद्वान थे, लेकिन ब्रजभाषा पर उनका पूरा अधिकार था, इसलिए उन्होंने फारसी में केवल एक मसनवी लिखी, लेकिन ब्रजभाषा में उनके नाम से लिखित 41 रचनाएँ मिलती हैं। इनमें कुछ प्रेमपरक हैं और अधिकतर भक्तिपरक। उनकी ख्याति उनके प्रेमपरक काव्य के कारण अधिक फैली। उनकी प्रेमपरक कविताओं में निजी जीवन की प्रेमकथा को आधार बनाया गया है। ऐसी कविता प्रेमिका सुजान के नाम समर्पित है। उनकी लोकप्रिय रचनाएँ हैं—'सुजान-हित' और 'घनानंद-कवित्त'। इनके अतिरिक्त 'प्रेम सरोवर', 'प्रीति-पावस', 'प्रेम-पद्धति', 'रसनायण', 'गोकुल गीत', 'कृष्ण कौमुदी' भी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

काव्यगत विशेषताएँ

स्वच्छन्द कवि घनानंद ने अपनी कविता में प्राचीन काव्यशैली का अनुकरण न करके नये ढंग से अपने प्रेम को व्यक्त किया है। उनका प्रेम काव्यशास्त्रीय नहीं था, स्वानुभूत था, इसलिए उसका धरातल शास्त्र नहीं, हृदय में है। उनका प्रेम रति और भक्ति दो रूपों में व्यक्त हुआ। उनका प्रेम निजी, एकनिष्ठ, निःस्वार्थ, समर्पणपरक और समस्त बंधनों से मुक्त है इनके प्रेम में संयोग में भी वियोग का भय बना रहता है। एक पल को भी चैन नहीं है। एक तपस्वी की भाँति उन्होंने प्रेमिका के लिए तप किया है, चातक की

भाँति प्रेम की स्वातिबूँद के लिए प्रतीक्षा की है तथा चकोर की भाँति अपने सुजान-चंदा से मिलने की व्याकुलता अनुभव की है—

जब तें निहारे घनआनंद सुजान प्यारे,
तब तें अनोखी आगि लागि रही चाह की।

घनानंद जब लौकिक सुजान को नहीं पा सके तो वे अलौकिक सुजान (श्रीकृष्ण) की भक्ति करने लगे। उन्होंने लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम में बदल लिया। वे लौकिक प्रेम में असफल होकर अलौकिक प्रेम की ओर गये थे, लेकिन उन्होंने उस प्रेम-यात्रा के लिए 'सुजान' को अपना संबल बनाये रखा। वे दिल्ली में रहे या वृंदावन में, उनका प्रेमी हृदय सुजान को न भुला सका। इस पंक्ति को पढ़कर आप यह नहीं जान पायेंगे कि यह प्रेमी घनानंद ने प्रेमिका सुजान के लिए कहीं हैं या प्रेमिका गोपी ने प्रेमी श्रीकृष्ण के लिए—

निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप,
बावरो भयो है मन मेरो न सिखै सुनै।

घनानंद के काव्य को पढ़कर यह नहीं कहा जा सकता कि वे निजी जीवन में प्रेम की असफलता से निराश होकर भक्ति की ओर मुड़े थे। उनके काव्य में कहीं भी निराशा का भाव नहीं है। जिस तरह ब्रज की गोपियाँ श्रीकृष्ण से वियुक्त होकर कभी निराश नहीं हुईं, उसी तरह घनानंद कभी निराश नहीं हुए। वृंदावन में गोपीभाव से श्रीकृष्ण की आराधना-वंदना करते रहे। श्रीकृष्ण के चरण जिस ब्रजरज में पड़े थे, उसमें विचरते हुए उन्होंने प्राण दिये थे, इसलिए मरते दम तक वे ब्रजभूमि और ब्रजरज के गुण गाते रहे। वहाँ के धर्म, विश्वास, लोकाचार, तीर्थ, गाँव आदि का बखान करते रहे। वहाँ की समग्र संस्कृति की सौंधी गंध उनके पूरे कृष्णभक्ति-काव्य में है।

घनानंद रीतिकाल के कवियों की भीड़ में अलग चमकते हैं। इस चमक का कारण यह है कि उन्होंने निजी प्रेम की अनुभूति को स्वर दिया है। अपने संयोग और वियोग के दिन उन्होंने सुजान के साथ बिताये थे तथा अपनी स्मृति में बसे विगत पलों को कविता के माध्यम से याद किया है। उनकी कविता हृदय से निकली है, रीतिबद्ध कवियों की तरह बुद्धि से नहीं लिखी गयी, इसीलिए उनको रीतिमुक्त अथवा रीतिकालीन स्वच्छन्द कवि कहा जाता है। उन्होंने रीतिबद्ध कवियों से अपनी कविता को विशेष बताने के लिए लिखा है—'लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोहित तौ मेरे कबित्त बनावत।' उनकी कविता में जो निजी 'प्रेम की पीर' है वह रीतिबद्ध कवियों की कविता में नहीं मिलती है। जैसाकि आधुनिक काल के छायावादी कवि सुमित्रानंदन पन्त ने लिखा है—'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।' यह बात घनानंद पर शत-प्रतिशत लागू होती है, क्योंकि घनानंद जीवन रहने तक वियोगी कवि रहे और वियोगी का भाव ही उनसे कविता लिखवाता रहा।

घनानंद के काव्य में सुजान शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है—एक, घनानंद की प्रेमिका सुजान के अर्थ में और दूसरा, श्रीकृष्ण के अर्थ में। जहाँ प्रेमिका के अर्थ में सुजान शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ कवि ने या तो अपनी प्रेमिका के रूप-सौंदर्य तथा उसका अपने मन पर पड़े प्रभाव का वर्णन किया है अथवा

उससे विछोह के कारण उत्पन्न हुए विरह-भाव की अभिव्यक्ति की है। जहाँ सुजान शब्द श्रीकृष्ण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, वहाँ कृष्ण-भक्ति-काव्य की परंपरा में गोपी-मन की संयोग अथवा वियोग दशाओं का चित्रण हुआ है। कभी-कभी कवि-मन और गोपी-मन के भाव मिलजुलकर प्रस्तुत हुए हैं, इसलिए घनानंद के सवैये और कवित्त छंदों में निहित भाव प्रेमिका सुजान और प्रेमी श्रीकृष्ण में से किसके प्रति व्यक्त हुआ है, इसको छंद में दिये गये संबोधक शब्द से समझना चाहिए।

घनानंद को उनके प्रथम प्रशंसक ब्रजनाथ ने ब्रजभाषा-प्रवीण की संज्ञा दी है, तो आधुनिक काल के गंभीर समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने घनानंद की रचनाओं में मिलने वाले शुद्ध ब्रजभाषा का चलताऊपन तथा साफगोई को अन्यत्र दुर्लभ पाया है। घनानंद ने अपनी ब्रजभाषा कविता में अन्तर्व्यथा का जिस कुशलता और बारीकी के साथ वर्णन किया है, वैसा वास्तव में पूरे ब्रजभाषा-काव्य में दुर्लभ है। घनानंद का ब्रजभाषा पर इतना अधिकार है कि वह उनके भावों को व्यक्त करने वाली चेली बन गयी है। उनकी भाषा में लक्षणा और व्यंजना भरपूर है। उनकी वाणी-वधू और उर-भौन में मौन का घूँघट डालकर बैठी रहती है और समय पर अपनी भावना का मुक्त प्रकाश करती है—‘उरभौन में मौन को घूँघट के दुरि बैठि बिराजति बात बनी।’ घनानंद की भाषा को मुहावरों के प्रयोग ने और अधिक प्राणवान तथा भावव्यंजक बनाया है। ये मुहावरे सटीक अभिव्यक्ति में सहायक हैं। ‘उदेग की आगि दहौं, हिय होरी लगाई, पहार से लगत हे मुँह लागी गाजैं, हिय फटि ना गाथौ’ जैसे कुछ मुहावरों से आप अनुमान लगा सकते हैं कि घनानंद की भाषा इनके प्रयोग से कितनी चमत्कारपूर्ण हो गयी है। जिस तरह मुहावरों ने घनानंद की भाषा को चमत्कारपूर्ण बनाया है, वैसे ही अलंकारों के सहज प्रयोग से उनकी भाषा में चमत्कार आया है। घनानंद ने शब्द और अर्थ-दोनों प्रकार के अलंकारों से अपनी भाषा को सजाया-सँवारा है।

घनानंद संगीत-निष्णात थे, इसलिए उनके कई पदों को राग-रागिनियों के संकेत के साथ प्रस्तुत किया गया है। पद के अतिरिक्त उन्होंने कवित्त, सवैया, दोहा और चौपाई छंदों का उपयोग किया है। ये उनके प्रिय छंद हैं, लेकिन उनके काव्य में अन्य छंदों का भी अभाव नहीं है। काव्य-विधा की दृष्टि से घनानंद ने कोई महाकाव्य और खंडकाव्य नहीं लिखा है। स्वच्छंद प्रकृति के कवि से ऐसी आशा भी नहीं की जानी चाहिए। लेकिन उनकी कुछ लंबी कविताएँ प्रबंध कोटि में अवश्य आती हैं। दानलीला, मानलीला, रासलीला आदि में उनकी प्रबंधात्मकता झलकती है। वैसे घनानंद का काव्य मुक्तक की कोटि में आता है। उनको जब जैसी भावधारा ने तरंगित किया, तब वैसा ही मुक्तक लिख डाला।

प्रतिपाद्य : कवित्त

घनानंद रीतिकाल की स्वच्छंद काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इनकी रचनाओं में शृंगार-भाव प्रमुख है। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का कवि ने स्वाभाविक एवं मार्मिक अंकन किया है। वियोग शृंगार के वर्णन में वह अधिक सफल रहे हैं। उनके काव्य में प्रेम की पीर का अनुभूतिपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी प्रतिपादन हुआ है। घनानंद का काव्य विरह-भावना से ओत-प्रोत है। क्योंकि उनका प्रेम एक तरफा

है। यह विरह-भावना इतनी प्रबल है कि संयोग में भी साथ रहती है। सुजान के प्रति अपने प्रेम की घनीभूत पीड़ा को उन्होंने काव्य में व्यक्त किया है।

घनानंद की कविता की संवेदना 'प्रेम की पीर' की है। उनकी कविता में प्रेम की गहराई को महसूस किया जा सकता है। नायिका के अपरूप के विविध स्वरूप उनकी कविता में व्यक्त हुए हैं। 'नयों-नयों लागत ज्यों-ज्यों निहारिये' इसी की अभिव्यंजना है।

घनानंद नायिका का वर्णन अत्यंत रुचिपूर्वक करते हैं। वे उस पर सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। कवि को अपनी प्रेयसी का रूप-सौंदर्य हर बार नया लगता है। उसकी आँखें उस सौंदर्य की बार-बार देखकर भी अतृप्त रहती हैं। कवि प्रेयसी के प्रणय के वशीभूत होकर अपने मन-प्राण को समर्पित कर बैठता है। समर्पण, प्रेम की पूँजी है जिसकी शुरुआत रूप-सौंदर्य पर आकर्षण से होती है।

रूप-सौंदर्य का वर्णन करने में कवि घनानंद जैसा कोई भी नहीं है। वह काली साड़ी में अपनी नायिका को देखकर मोहित हो जाता है। काली साड़ी ने सुजान के गोरे शरीर को अधिक कांतिमान कर दिया है। नायिका का उज्ज्वल सौंदर्य ज्वाला से उठने वाले धुएँ के बावजूद आँखों को शीतलता और सुख प्रदान करने वाला है। इस सबके बावजूद प्रेम करने वाला एक सच्चा प्रेमी ही हो सकता है, जो विरह-व्यथा की आग में जलता नहीं है बल्कि उसमें शीतलता को प्राप्त करता है।

इसमें वियोगी प्रेमी बादल को समर्थ परोपकारी बताते हुए प्रार्थना करता है कि जानबूझकर विश्वासघात करने वाले प्रियतम के आँगन में कभी उसके आँसुओं को ले जाकर बरसा दें। प्रेमी मेघ से कहता है कि तुम केवल दूसरों का काम करने के लिए शरीर धारण करके घूमते हो और इसलिए अपना परजन्य नाम सार्थक करते हो। समुद्र के खारे जल को लेकर उसे तुम अमृत के समान शीतल और सुस्वाद बना देते हो। तुम सबके मन में सज्जनता के प्रभाव का संचार करते हो। तुम आनंद के बादल ही संसार को जीवन दान देने वाले हो। कुछ तो मेरी पीड़ा का अनुमान करो। तुम मेरे आँसुओं को ले जाकर उस विश्वासघाती सुजान के आँगन में बरसा दो। ताकि उन्हें भी प्रेम की इस दशा का अहसास हो। उन्हें प्रेम-मार्ग का ज्ञान हो।

प्रेममार्ग की दुर्गमता बताते हुए घनानंद कहते हैं कि प्रेम का मार्ग इतना सीधा है कि उसमें किसी प्रकार की चतुराई के लिए कोई स्थान नहीं है। उस मार्ग पर सच्चे प्रेमी ही चल सकते हैं। जिन्हें अपनेपन का बोध हो अहंकार को पूरी तरह छोड़ दिया हो, जो कपटी हैं, वे उस सीधे मार्ग पर चलते हुए झिझकते हैं। इस प्रेममार्ग में केवल एक अंक है। दूसरा कोई अंक है ही नहीं। यहाँ किसी की नहीं चलने वाली। वह सुजान सबका मन ले लेती है। अपना किसी को नहीं देती। यह चतुरता कहाँ से सीखी है कि दूसरों का मन लेकर अपना छटांक भी नहीं देते हो। अर्थात् प्रेम में कोई व्यापार नहीं होता है।

कवि घनानंद अपनी प्रेयसी से कोई शिकवा-शिकायत नहीं करते बल्कि वे अपनी दुःख:द और दयनीय स्थिति के लिए स्वयं को जिम्मेदार मानते हैं। वे मानते हैं कि मैं आज जो इतनी पीड़ा और कष्ट में हूँ, वह अपने प्रेमी-मन के कारण हूँ। आज मेरी प्रेमिका ने मुझसे मुँह मोड़ लिया है तो वह मेरा भाग्य दोष

है। अगर प्रेयसी उसकी प्रणय अपेक्षाओं को फलीभूत नहीं करती तो उदास रहना और बिना आग के ही जलते-तड़पते रहना है। अर्थात् प्रेम की विरह रूपी आग में जलना है। प्रेम की दाहकता ही उसकी उत्कृष्टता है। उसका भाव है। इस प्रकार घनानंद की कविता प्रेम की निश्चलता, उत्कृष्टता, सच्चाई, विरह आदि को एक साथ समझती है।

घनानंद का सम्पूर्ण काव्य हृदय की गहराई को परखने की कसौटी है। इस कसौटी पर वही खरा उतर सकता है, जिसने 'नेह की आँखिन पीर तक' हो। प्रेममार्ग पर चलने वाला ऐसा धीर पथिक हिन्दी साहित्य में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। तभी तो आचार्य शुक्ल ने भी इनकी प्रशंसा इन शब्दों में की है—'प्रेम-मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक का दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।'

व्याख्या भाग

1. रावरो रूप की रीति.....के हाथनि हारियै।।3।।

शब्दार्थ : रावरो—आप के, अनूप—अनुपम, अघानि—तृप्ति, जीव हृदय, वारयो—न्यौछावर कर दिया, सहारियै—सहारा दीजिए, दहै—जलती है, रीझि—रीझना, मोहित होना, हुतौ—था।

प्रसंग : प्रस्तुत छंद के रचयिता कवि घनानंद हैं। घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा के आधार स्तंभ हैं। इन्होंने अपने काव्य में स्वच्छंद प्रेम के गीत गाये हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन में इन्होंने जो कुछ भोगा, जो कुछ देखा उसी को अपने काव्य में वर्णित किया है। इस छंद में कवि ने अपनी मोहित स्थिति को स्पष्ट किया है। उनकी प्रेमिका सुजान बहुत ही सुन्दर है और यह विलक्षण सौंदर्य पल-पल नया रूप धारण कर लेता है।

व्याख्या : कवि अपनी प्रियतमा को उसके रूप-सौंदर्य के विषय में बताते हुए कहता है कि—हे सुजान, तेरा रूप-सौंदर्य अद्भुत है, आपके रूप की रीति बड़ी अनोखी है। इसे ज्यों-ज्यों देखो यह हर बार नया-नया लगता है। उसकी गति बड़ी विचित्र है। यानि सुजान का रूप-सौंदर्य क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। उसे जितनी बार देखा जाए और जितना देखा जाए उसमें एक नवीनता की अनुभूति होती है। यही सुन्दरता की कसौटी है कि वह हर क्षण नवीन लगे। घनानंद के नेत्रों को भी अनोखी आदत पड़ गई है कि वह सुजान के रूप के अतिरिक्त और किसी को देखना भी पसन्द नहीं करते। किसी और को देखकर उन्हें तृप्ति नहीं मिलती। उन्हें हर समय सुजान को देखना ही अच्छा लगता है। हे सुजान, मेरे पास एक ही प्राण था, वह भी मैंने तुम्हारे रूप-सौंदर्य पर न्यौछावर कर दिया, अब मैं लोक की लाज और परलोक की चिंता से मुक्त हो गया हूँ। मैं अपनी रीझ के हाथों सब कुछ हार गया हूँ अर्थात् मैं तुम्हारे प्रति इतना अनुरक्त हूँ कि रोकने पर भी मैं अपने मन पर नियन्त्रण नहीं रख पाता। तुम्हारी याद मुझे निरन्तर जलाती रहती है, सताती रहती है। अर्थात् सुजान के प्रति बहुत अनुरक्त हो गया हूँ।

विशेष : 1. नायिका के अनुपम सौंदर्य का वर्णन हुआ है।

2. अपूर्व सौंदर्य को देखकर आँखें नत हो जाती हैं और पुनः देखने पर उसका रूप नवीन-सा दिखाई पड़ने लगता है।

3. छंद सवैया है।
4. शृंगार रस है।
5. अनुप्रास, पुनरुक्ति, विरोधाभास तथा उदाहरण अलंकार है।
6. ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।

2. स्याम घटा लपटी.....चुनि साँवरी सारी॥4॥

शब्दार्थ : धूम के पुँज = धुएँ के समूह में। बीर = भाई। पौन = पवन। लीर = बीड़ा उठाने वाला। तिहारियै = तुम्हारी। सुजान = घनानंद की प्रेमिका। सकोच = संकोच करना। सहारियै = सहारा दीजिए। बाबरी = प्रेम में पागल। हारियै = हारना। स्याम = श्यामल रंग। सौहे = सुशोभित होना। अंक = शरीर। धूम = उल्लासपूर्ण। चहल = पहल। ज्वाला = अग्नि।

प्रसंग : प्रस्तुत छंद के रचयिता कवि घनानंद हैं। घनानंद स्वच्छन्द काव्यधारा के आधार स्तंभ हैं। इन्होंने अपने काव्य में स्वच्छंद प्रेम के गीत गाये हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन में इन्होंने जो कुछ देखा, जो कुछ भोगा उसी को अपने काव्य में वर्णित किया है। इस छंद में कवि ने नायिका के रूप-सौंदर्य का वर्णन किया है। कवि ने नायिका को काली साड़ी पहने देखा और वह उस पर मोहित हो गया।

व्याख्या : रूप-सौंदर्य का वर्णन करने में कवि घनानंद का कोई सानी नहीं है। नायिका को काली साड़ी में देखकर घनानंद मोहित हो जाते हैं। घटा के बीच में आकाश में बिजली चमक रही हो अर्थात् नायिका का शारीरिक सौंदर्य काली साड़ी में बहुत ही कांतिवान प्रतीत हो रहा है। नायिका का रूप काली साड़ी पहनकर अमावस की रात्रि में खिली हुई चाँदनी के समान उज्ज्वल दिखाई दे रही है। वह धुएँ के समूह में उठने वाली ज्वाला के समान दिखाई दे रही है किन्तु आँखों की शीतलता और सुख देने वाली है। सुजान इस शृंगार में बहुत ही सुन्दर सुशोभित हो रही है उसका सुन्दर स्त्री-तन सुन्दर चमक लिए हुए है। घनानंद कहते हैं कि सुजान ने चुनकर जो साँवरी साड़ी पहनी है वह उसके रूप-सौंदर्य पर बहुत ही आकर्षक लग रही है। साँवरी साड़ी ने सुजान के गोरे शरीर को अधिक कांतिमान कर दिया है।

- विशेष :**
1. सुजान के अद्भुत आकर्षक सौंदर्य का वर्णन हुआ है।
 2. काली साड़ी सुजान के गोरे शरीर की सुन्दरता को बढ़ा रही है।
 3. अनुप्रास, उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
 4. सवैया छंद का प्रयोग हुआ है।
 5. शृंगार-रस का वर्णन है।
 6. ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।

3. एरे बीर पौन.....आनि दै॥6॥

शब्दार्थ : दृग-आँखें। निहारि-देखना। फबी-अच्छा लगना। चोपनि-उमंग। बीर-भाई। पौन-पवन। गौन-गमन, आना जाना। बीरी-बीड़ा उठाने वाला। ढरकौहीं-ढलने वाली आदत। उजियारे-उजले, अच्छे। अन्त-अन्यत्र। पीठि दै-पीठ मोड़कर। मूरि-जड़ीबूटी। धूरि-धूल। तिन पायन की-उनके पैरों की।

प्रसंग : प्रस्तुत छंद के रचयिता कवि घनानंद हैं। घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा के आधार स्तंभ हैं। इन्होंने अपने काव्य में स्वच्छंद प्रेम के गीत गाये हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन में इन्होंने जो कुछ देखा, जो कुछ भोगा उसी को अपने काव्य में वर्णित किया है। इस छंद में कवि पवन से प्रार्थना करता है कि पवन उस विरही प्रेमी पर कृपा करे और उसके प्रिय के चरणों की थोड़ी-सी धूल लेकर आएँ। इसलिए वह पवन की प्रशंसा करता है।

व्याख्या : विरही प्रेमी कवि कहता है कि हे भाई पवन! तुम्हारा आना-जाना तो सभी दिशाओं में रहता है। अर्थात् तुम वहाँ भी जा सकते हो जहाँ मेरे प्रियतम निवास करते हैं। तुम्हारे समान इस संसार में और कोई व्यक्ति नहीं है जो इस कठिन कार्य को पूरा कर सके। हे पवन तू अपने मन को आदत डाल दे जिससे कि वे दूसरों को दुखी देखकर उनका दुख दूर करने का प्रयास करे। हे वीर पवन तू संसार को प्राण देने वाला है। संसार की रक्षा करने वाला है। तेरी दृष्टि में छोटे-बड़े सब समान हैं। तू संसारभर को अत्यधिक आनंद प्रदान करने वाला है। अतः हे पवन तू मुझ जैसे दुखियों का दुख दूर कर सुख प्रदान कर। अर्थात् तू मेरा भी एक काम कर दे। मेरे प्रियतम सुजान बहुत गुणवान और अत्यधिक कांतिमान हैं। उन्हें मुझ से अब तक बड़ा प्रेम था। लेकिन अब वे मेरे प्रति निर्मोही हो गयी हैं। मुझे भुलाकर न जाने कहाँ जाकर बैठ गई हैं। अतः तू जानकर उनके चरणों की धूल लाकर मुझे दे दे। मेरी विरह-वेदना की पीड़ा को दूर करने वाली संजीवनी-बूटी के समान उसके पाँवों की धूल को अपनी आँखों में अंजन की भाँति लगाना चाहता हूँ। इसलिए तू मुझे उसके चरणों की धूल ला दे। ऐसा करने से मेरी विरह-वेदना कुछ कम हो सकेगी।

विशेष : 1. घनानंद का यह कवित्त दूत-परंपरा का द्योतक है।

2. इसमें पवन को दूत बनाकर भेजा गया है। उससे अपने प्रिय के चरणों की धूल को लाने का आग्रह किया है।

3. 'पीठ देना' मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

4. इसमें कवित्त छंद का प्रयोग हुआ है।

5. अनुप्रास, यमक, रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

6. ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।

4. परका जहिं देह.....अँसुवानहिं लै बरसौ॥४॥

शब्दार्थ : परकाजहि = दूसरों के काम के लिए। देह = शरीर। धारि फिरौ = धारण करके इधर-उधर फिरना। परजन्य = दूसरों के लिए जिसका जन्म हुआ है। जथारथ = यथार्थ। दरसौ = दिखाई दो। निधि-नीर = समुद्र का जल। सुधा = अमृत। सरसो-दर्शाते रहो। घनानंद = आनंदरूपी बादल। जीवन-दायक = जल देने वाला। मेरियो = मेरी भी। पीर = पीड़ा। हियै = हृदय में। परसौ = स्पर्श करना। कबहूँ = कभी। बिसासी = विश्वासघाती। वा = उन। लै = ले जाकर।

प्रसंग : प्रस्तुत छंद के रचयिता कवि घनानंद हैं। घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा के आधार स्तंभ हैं। इन्होंने अपने काव्य में स्वच्छंद प्रेम के गीत गाये हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन में इन्होंने जो कुछ देखा, जो कुछ भोगा उसी को अपने काव्य में वर्णित किया है। इस छंद में कवि ने प्रकृति को चेतन सत्ता के रूप में स्वीकार करके उससे अपनी व्यथा की कहानी कही है। कवि मेघों से अनुरोध करता है कि वे कवि के आँसुओं को ले जाकर प्रिय सुजान के आँगन में बरसा दें ताकि प्रिय को यह विश्वास हो जाए कि कवि उसके विरह में आँसु बहा रहा है।

व्याख्या : कवि कहता है कि हे मेघों! तुम्हारा नाम परजन्य है अर्थात् तुम्हारा नाम ही दूसरों की सेवा के लिए हुआ है। तुम अपने इस शरीर को दूसरों की सेवा के लिए ही धारण किये हुए इधर-उधर घूमते हो और अपना नाम परजन्य सार्थक करते हो। तुम सागर के खारे जल को अपने साथ उड़ाकर उसे वर्षा के रूप में बरसाकर अमृत के रूप में बदल देते हो। इस प्रकार तुम हर प्रकार से अपनी सज्जनता का प्रचार करते हो। कवि घनानंद कहते हैं कि हे आनन्द के घन तुम जगत को जीवन देने वाले हो अर्थात् यह संसार तुमसे ही जीवन पाता है। यदि जल न बरसे तो सब कुछ नष्ट हो जाए। इसलिए तुम मेरी पीड़ा को समझो और कभी मेरे आँसुओं को ले जाकर उस विश्वासघाती प्रियतम के आँगन में बरसा दो। कवि का भाव यह है कि वर्षा का पानी मीठा होता है और ये आँसू खारे हैं। यदि मेघ इन आँसुओं को ज्यों का त्यों ले जाकर बरसा दें तो संभव है वह प्रियतम मेरे आँसुओं की वर्षा को पहचान कर द्रवित हो जाए।

विशेष : 1. घनानंद ने अंततः प्रकृति और बाह्य प्रकृति में सामंजस्य का प्रदर्शन किया है।

2. कवि ने प्रियतम को निसासी कहकर अपनी आत्मवेदना पर प्रकाश डाला है।

3. कबहूँ, भी आँसुवानहिं, आदि शब्दों में व्यंजना की अभिव्यक्ति है।

4. अनुप्रास, उपमा, श्लेष अलंकार का प्रयोग हुआ है।

5. वियोग-शृंगार की अभिव्यक्ति है।

6. ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।

5. अति सूधो.....छटाँक नहीं॥23॥

शब्दार्थ : सयानप = स्यानापन, चतुराई। बाँक = टेढ़ापन। आपुनपो = अपनत्व। झझकै = हिचकते हैं। निसांक = निश्शंक। पाटी पढ़े = पट्टी पढ़े हो, शिक्षा प्राप्त करना। मन = हृदय, मनभरा। छटाँक = थोड़ा-सा भी, वजन। साँचे = सच्चे। आंक = अंक। लेहु = लेना। पीढी = पीठ देकर। अमोहि = मोह रहित। तिया = स्त्री। थिर = स्थिर। बीज = बिजली।

प्रसंग : प्रस्तुत छंद के रचयिता कवि घनानंद हैं। घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा के आधार स्तंभ हैं। इन्होंने अपने काव्य में स्वच्छंद प्रेम के गीत गाये हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन में इन्होंने जो कुछ देखा, जो कुछ भोगा उसी को अपने काव्य में वर्णित किया है। यहाँ प्रेम-मार्ग की सरलता और निश्चलता का वर्णन

किया गया है। कवि अपनी निष्ठुर प्रेयसी को उपालंभ देता है कि उसका मन तो एकनिष्ठ भाव से उसका (प्रेयसी) हो गया, लेकिन उसने अभी तक अपने सौंदर्य की एक झलक भी नहीं दिखाई।

व्याख्या : कवि घनानंद अपने प्रिय को प्रेम-मार्ग की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि हे प्रिय, प्रेम का मार्ग अत्यंत सरल और सीधा है। इसमें टेढ़ेपन अर्थात् चतुराई के लिए कोई स्थान नहीं है। क्योंकि चतुराई से चलने वाला प्रेम के मार्ग पर चलने में सफल नहीं हो सकता। प्रेम का मार्ग सच्चे लोगों के लिए है जो अपना अहंभाव त्यागकर इस मार्ग पर चलते हैं और अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। जिनके हृदय में थोड़ा-सा भी छल कपट है वे इस मार्ग पर निडर होकर नहीं चल पाते। कपटी लोग इस मार्ग पर चलने में झिझकते हैं। कवि कहता है कि हे सुजान! सच्चा प्रेमी तो वह होता है जो प्रेम मार्ग पर सीधी रेखा की तरह चल पड़ता है। इधर-उधर नहीं देखता है। अपने मार्ग से विचलित नहीं होता है। वह ही इस मार्ग पर बिना किसी असुविधा के बढ़ सकते हैं। अपने प्रेम की एकनिष्ठता को निरूपित करते हुए कवि कहता है कि घने आनंद को अर्थात् अत्यधिक आनंद को देने वाले प्रियतम सुजान सुनो मेरे मन में केवल तुम्हारे प्रति अनन्य प्रेम और निष्ठा है। मेरे हृदय पर केवल तुम्हारे प्रेम की छाप है। मैंने तुम्हारे सिवा किसी और से प्रेम नहीं किया है जिसकी छाप मेरे हृदय पर पड़ती है। मेरे लिए तो प्रियतम के रूप में केवल तुम्हारा अस्तित्व है। मैं आज तक यह नहीं समझ सका कि हे निष्ठुर और निर्दयी प्रिय तुमने किस पाठशाला से शिक्षा ग्रहण की है। तुम लेना तो मनभर (40 सेर) चाहते हो परन्तु देने के लिए एक छटाँक (सेर का सोलहवाँ भाग) भी तैयार नहीं हो अर्थात् तुम दूसरे का मन तो बड़ी चतुराई से मोह लेते हो पर बदले में अपना मन जरा भी किसी को नहीं देते हो।

विशेष : 1. प्रेम के पथ में बुद्धि और तर्कशीलता के लिए कोई स्थान नहीं है।

2. प्रेम के वास्तविक स्वरूप का निरूपण बड़े सुंदर ढंग से किया है।

3. मुहावरों का प्रयोग हुआ है। एकतें दूसरी आँक नहीं, पारी पढ़े हो, मन लेहु पैदेहु छटाँक नहीं।

4. अनुप्रास, श्लेष, यमक, रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

5. छन्द सवैया है।

6. ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।

6. मेरोई जीव जौ.....पावक ही दहनो है।।24।।

शब्दार्थ : मेरोई = मेरा ही। जीव = प्रेमी मन। मारत = कष्ट देना। मोहि = स्वयं को। तजी = त्याग, भागनि = भाग्य। लहना = लिखा। आस = आशा। भए = होकर। दहनो = जलना। इते पै = इस पर। अजान = अनजान। पावक = आग। विरहाग्नि। दहनो = जलना।

प्रसंग : प्रस्तुत छंद के रचयिता कवि घनानंद हैं। घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा के आधार स्तंभ हैं। इन्होंने अपने काव्य में स्वच्छंद प्रेम के गीत गाये हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन में इन्होंने जो कुछ देखा, जो

कुछ भोगा उसी को अपने काव्य में वर्णित किया है। इस छंद में कवि कहते हैं कि प्रेम में प्रियतम द्वारा दिए गए दुःख के लिए वह स्वयं दोषी हैं।

व्याख्या : कवि अपनी प्रेयसी से कोई शिकवा या शिकायत नहीं करते बल्कि अपनी दयनीय स्थिति के लिए स्वयं को ही जिम्मेदार मानते हैं। वे कहते हैं कि मैं आज जिस पीड़ा और कष्ट में हूँ वह अपने प्रेमी-मन के कारण हूँ। आज मेरी प्रेमिका ने मुझसे मुँह मोड़ लिया है, मुझे पहचानने से इंकार कर दिया है। यह मेरे भाग्य का दोष है। प्रेम की विरह रूपी आग में जलता हुआ मेरा मन बहुत आशा के साथ तुम्हारी ओर देख रहा है। मेरी मनोदशा को जानकर भी तुम अनजान बन गये हो, अब तो मुझे बिना आग के ही इस विरहानुभूति की अग्नि में जलना होगा। उदास रहना और बिना आग के जलते-तड़पते रहना है। तुम्हारे विरह की आग में जल-जलकर जिए जाना ही अब मेरा भाग्य बन चुका है।

- विशेष :**
1. घनानंद को प्रेम की पीर का कवि कहा जाता है।
 2. उपालम्भ शृंगार का उत्कृष्ट उदाहरण है।
 3. अनुप्रास, उपमा, यमक अलंकार का प्रयोग हुआ है।
 4. ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।
 5. माधुर्य गुण है।
 6. सवैया छंद का प्रयोग हुआ है।

1. रइसों के सपूत : मैथिलीशरण गुप्त

—डॉ. भवानी दास

मुक्त शिक्षा विद्यालय

साहित्यिक-परिचय

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का आधुनिक युग के द्विवेदी कालीन कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अपने देशकाल के प्रत्येक विचारधारा, संस्कृति और साहित्यिक चेतनाओं का समन्वय अपने काव्य में किया। इन्होंने अपनी प्रेरणा से जन-जीवन में प्राण फूँककर युग को अमर संदेश दिया है।

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1846 ई. में चिरगाँव जिला झाँसी (उत्तर-प्रदेश) के एक वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता सेठ रामचरण सीता के उपासक थे। इसलिए इन्होंने पुत्र का नाम मिथिलाधिपनन्दिनीशरण रखा, जो आगे चलकर मैथिलीशरण हो गया। वे काव्य-प्रेमी थे और 'कनकलता' उपनाम से कविताएँ भी किया करते थे। अतः इनको भगवद्भक्ति विशेषतः राम और सीता के प्रति भक्ति एवं काव्य-प्रेम की प्रेरणा अपने पिता से ही प्राप्त हुई। इस भक्ति-भाव और काव्य-प्रेम का निरन्तर विकास होता रहा, जिसने आगे चलकर उन्हें राम कथा का अमर-गायक बना दिया।

आरम्भ में गुप्त जी 'रसिकेश' और 'रसिकेन्द्र' नाम पत्रिका से ब्रजभाषा में कविता लिखा करते थे। इनकी आरम्भिक कविताएँ कलकत्ता से प्रकाशित हाने वाली 'वैश्योपकारक' में प्रकाशित हुई। उनके साहित्यिक जीवन की शुरुआत उसी पत्रिका से हुई थी। धीरे-धीरे जब उनका परिचय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से हुआ, उन्होंने उन्हें खड़ीबोली में लिखने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। इसके बाद इस नवोदित कवि की रचनाएँ 'सरस्वती' पत्रिका में स्थान पाने लगीं। इनके काव्य-प्रतिभा के विकास में द्विवेदी जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इनसे समय-समय पर मिलने वाले प्रोत्साहन से गुप्त जी की काव्य-कला में निखार आता गया। 'साकेत' की सृजन-प्रेरणा भी इनको, उन्हीं के एक लेख 'उर्मिला विषयक उदासीनता' से प्राप्त हुई।

धीरे-धीरे गुप्त जी में कार्य करने की अद्भुत क्षमता पैदा हो गई। उन्होंने स्वतः ही संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी आदि भाषाओं का अध्ययन किया। समाज एवं राष्ट्र ने भी इनकी साहित्य-साधना का समुचित सत्कार किया। अब वे हिन्दी-जगत में 'दददा' के नाम से पुकारे जाने लगे थे। 'सादा-जीवन, उच्च विचार' का ये आजीवन पालन करते रहे। गुप्त जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रप्रेम को बढ़ाने, आर्य-संस्कृति का उत्थान करने तथा प्राचीनता और नवीनता का समन्वय करने का महान कार्य किया। इसीलिए राष्ट्र ने उन्हें राष्ट्रकवि के रूप में सम्मानित किया। सन् 1937 में उन्हें 'साकेत' महाकाव्य पर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की ओर से मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ और सन् 1946 ई. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने गुप्त जी को 'साहित्य वाचस्पति' से विभूषित किया। सन् 1948 ई. में आप को आगरा विश्वविद्यालय ने डी. लिट् की उपाधि देकर सम्मानित किया और सन् 1952 से लेकर सन् 1964 तक वे राज्यसभा के मनोनीत सदस्य रहे। 12 दिसम्बर सन् 1964 में झाँसी में ही आप का स्वर्गवास हो गया।

गुप्तजी एक साहित्य-साधक थे। उन्होंने लिखा है कि—‘केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।’ अतः काव्य-सर्जन उनके लिए केवल मनोरंजन मात्र न था, बल्कि उसका एक निश्चित उद्देश्य, एक निश्चित लक्ष्य था। वह था—साहित्य के माध्यम से मानवता का उन्नयन। यह कार्य साधना से ही संभव था। गुप्त जी ने इसके लिए पहले अपने जीवन की साधना की। उन्होंने अपने प्रिय आदर्शों को अपने जीवन में ढाला, फिर भाषा एवं काव्य की साधना द्वारा उन आदर्शों को वाणी प्रदान की। इसलिए इनकी रचनाएँ इतनी गारिमामयी बन सकीं।

गुप्त जी का रचना-जगत अत्यन्त विशद एवं व्यापक है। इन्होंने गीतिकाव्य, खण्डकाव्य और महाकाव्य की रचना की, पर वे प्रबन्धकार के रूप में सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। अध्ययन की सुविधा के लिए इनकी रचनाओं को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है—

महाकाव्य—‘साकेत’, ‘जय-भारत’।

खण्डकाव्य—‘रंग में भंग’, ‘जयद्रथ-वध’, ‘शकुन्तला’, ‘अनघ’, ‘पंचवटी’, ‘सैरन्धी’, ‘वन-वैभव’, ‘वक-संहार’, ‘गुरुकुल’, ‘सिद्धराज’, ‘द्वापर’, ‘नहुष’, ‘कावा और कर्बला’, ‘प्रदक्षिणा’, ‘हिडिम्बा’, ‘युद्ध’, ‘विष्णु-प्रिया’, ‘रत्नावली’।

मुक्तक काव्य—‘पदम्-प्रबन्ध’, ‘भारत-भारती’, ‘पत्रावली’, ‘वैतालिक’, ‘किसान’, ‘स्वदेश-संगीत’, ‘हिन्दू’, ‘शक्ति’, ‘विकट-भट’, ‘झंकार’, ‘मंगल घट’, ‘विश्व-वेदना’, ‘अंजलि’, ‘अजीत’, ‘यशोधरा’, ‘कुणाल-गीत’, ‘अर्जन और विसर्जन’, ‘भूमि त्याग’, ‘राजा और प्रजा’, ‘उच्छवास’, ‘काव्यश्री’।

निबन्ध—‘देशी शक्कर क्यों खानी चाहिए’, ‘हिन्दी कविता किस ढंग की हो’, ‘काव्य पद्माकर की समालोचना’, ‘मेरे कवि का आत्मदान’, ‘मर्यादा पुरुषोत्तम राम’, ‘भारतेन्दु हरिश्चन्द्र’, ‘जगतदेव की कहानी’, ‘अन्योक्ति’।

संस्मरण—‘अपने विषय में’ ‘गणेश जी’, ‘आचार्य देव’, ‘प्रसाद जी’, ‘हमारा वृन्दावन’, ‘अनुज’।

अनुवाद—‘विरहिणी’, ‘मेघनाद-वध’, ‘प्लासी का युद्ध’, ‘स्वप्न वासवदत्ता’, ‘उमरखय्याम की रुबाइयाँ’, ‘वीरांगना’, ‘गीतामृत’, ‘दूत’, ‘प्रतिमा’, ‘अभिषेक’, ‘दूत वाक्य’, ‘चरूदत्ता’, ‘साधना’।

गुप्त जी की कृतियों का अध्ययन इस बात की तरफ संकेत करता है कि उनका काव्य-भण्डार विपुल है, उनमें वर्णन की विविधता है, ये प्रसंग, प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक एक बहुत बड़े समय को समेटे हुए हैं। इनके काव्य के वर्ण्य-विषय को स्थूल दृष्टि से चार भागों में विभक्त कर सकते हैं पौराणिक अन्य-धर्मों से सम्बन्धित ऐतिहासिक और समसामयिक। इनकी कुछ रचनाओं के विषय पुराणों की विषय-सामग्री से सम्बन्ध रखते हैं। जैसे—‘साकेत’, ‘द्वापर’, ‘नहुष’, ‘जयभारत’, ‘शकुन्तला’, ‘पंचवटी’, ‘हिडिम्बा’ आदि। इनमें हिन्दु-धर्म और भारतीय संस्कृति का अनेक मौलिक उद्भावनाओं के साथ कवि ने वर्णन किया है। अन्य धर्मों से सम्बन्धित काव्यों में इन्होंने अपने धर्म से इतर धर्मों के प्रसंगों को लेकर साम्प्रदायिक एकता की दिशा में प्रयत्न किया है। इस तरह की रचना ‘यशोधरा’ में कवि ने बौद्ध धर्म के बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले कथानक को वर्ण्य-विषय बनाया है। ‘गुरुकुल’ में सिक्ख सम्प्रदाय के गुरुओं के सम्बन्ध में भावाभिव्यक्ति की है। ‘काबा और कर्बला’ में इस्लाम धर्म से सम्बन्ध रखने वाले हसन और हुसेन आदि का वर्णन है। ‘विष्णु-प्रिया’ में बंगला के चैतन्य महाप्रभु के जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ हैं।

ऐतिहासिक वर्ण्य-विषय से संबन्धित वे रचनाएँ हैं, जिनका निर्माण भारतीय इतिहास की किसी प्रसिद्ध घटना के आधार पर हुआ है। 'सिद्धराज', 'रंग में भंग', 'यशोधरा', 'कुणालगीत' आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं। इन्होंने समसामयिक जीवन की अनेक बातों को लेकर भी काव्य-निर्मित किया है। 'भारत-भारती', 'किसान', 'अर्ध्र्य', 'स्वदेश-संगीत', 'अजीत' आदि रचनाएँ समसामयिक परिस्थितियों को ध्यान रखकर रची गई हैं। उनका मूल-स्वर स्वदेश प्रेम है। उनमें उनका अखण्ड विश्वास—'सर्वत्र हमारे संग, स्वदेश हमारा' व्यक्त हुआ है। गुप्त जी ने भारत की अतीतकाल समृद्धि, प्राचीन संस्कृति का वैशिष्ट्य, वर्तमान समाज की गिरती हुई दशा, समाज की रूढ़ीग्रस्तता, शोषित के प्रति सहानुभूति, नारी के प्रति सम्मान उनके उज्ज्वल भविष्य को लेकर अपनी कृतियों में भावाभिव्यक्ति की। अतः इनके काव्यों में वर्ण्य-विषय की विविधता है। इसके साथ ही साथ इनकी रचनाओं की कुछ और भी विशेषताएँ हैं जो उनको रोचक और महत्त्वपूर्ण बना देती हैं— जैसे—मर्मस्पर्शिता, प्रकृति-प्रेम, कल्पनाशीलता, चित्रात्मकता (बिम्बात्मकता) भाषा की सरलता, प्रसंगानुकूलता, मृदुता आदि।

गुप्त जी के काव्य में ऐसे भी प्रसंग आते हैं, जो पाठक के मर्म को छू लेते हैं। ये प्रसंग (वर्णन) कवि की भावुकता की पहचान भी कराते हैं। इनके महाकाव्यों और खण्ड-काव्यों में इस तरह के अनेक प्रसंग आए हैं। उदाहरण के लिए 'साकेत' में, जब उर्मिला और भरत का चित्रकूट में मिलन होता है, उस समय उर्मिला के कथन में कितनी मर्मस्पर्शिता है उसे देखिए—

मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी,
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी
गिर पड़े दौड़ सौमित्रि प्रिय पद तल में
वह भींग उठी प्रिय चरण धरे दृग जल में॥

'साकेत' में उर्मिला का विरह-वर्णन सबसे अधिक मर्मस्पर्शी है। यहाँ पर अनेक तरह के भावों की बड़ी ही कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। इसी तरह के प्रसंग इनके अन्य काव्यों में भी देखे जा सकते हैं।

इनके काव्यों में नवीन कल्पनाओं का सुन्दर रूप भी देखा जा सकता है जो पाठक को मुग्ध कर लेते हैं। उनमें से कुछ कल्पनाएँ जो काव्य से सम्बन्ध रखती हैं, वह कवि की मौलिकता है। अपने दृष्टिकोण से उन्होंने अनेक प्रसंगों को तर्कयुक्त और विश्वसनीय बनाने का प्रयत्न किया है। उनके वर्णन करने की विधि विशेष रूप से कल्पना-सौन्दर्य से युक्त है। इसके लिए 'साकेत' महाकाव्य की नवीन कल्पना से युक्त एक उदाहरण देखिए सूर्य निकल रहा है, उसके निकलने पर ओस की बूँदें सूख जाती हैं, इस पर कवि कल्पना करता है कि वह सूर्य हंस है और तारागण रूपी मोतियों को चुग रहा है—

सखि, नील नभस्सर में उतरा
यह हंस अहा! तरता तरता
अब तारक मौक्तिक शेष नहीं
निकला उसको चरता-चरता॥

इसी प्रकार की कल्पना का सौन्दर्य इनके काव्यों में पग-पग पर देखने को मिलता है। जहाँ पर कवि ने अलंकृत वर्णन किया है, वहाँ पर उनकी कल्पना और अधिक निखर उठी है।

गुप्त जी के काव्य में जहाँ अनेक तरह के प्रसंग आए हैं, वहाँ मन को मुग्ध करने वाला प्रकृति-वर्णन भी द्रष्टव्य है। 'पंचवटी' से एक उदाहरण देखिए—

चारू चन्द्र की चंचल किरणों
खेल रहीं हैं जल थल में
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है
अवनि और अम्बर तल में॥

पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोंको से
मानो तरु भी झूम रह थे
मंद पवन के झोंको से॥

रसों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अगर उनके काव्यों को परखा जाय तो उनमें प्रायः सभी रसों की अभिव्यक्ति मिलती है। शृंगार रस की अभिव्यक्ति—'साकेत', 'नहुष', 'पंचवटी', 'सिद्धराज', 'यशोधरा' में करुण रस की अभिव्यक्ति—'कुणाल गीत', 'काबा और कर्बला', 'किसान' आदि में, भयानक रस 'जय-भारत' में शान्तरस 'झंकार' में, अद्भुत रस 'शक्ति' में, हास्य रस 'सिद्धराज पंचवटी' में, रौद्र वीर रस के प्रसंग—'जयद्रथ-वध' में हैं। वात्सल्य के भी उदाहरण इनके काव्यों में मिलते हैं।

गुप्त जी ने अपने काव्य-लेखन की शुरुआत ब्रजभाषा से की थी। फिर आगे जाकर इन्होंने भाषा के रूप में खड़ी बोली को अपनाया। इनकी भाषा के दो प्रमुख गुण हैं—सरलता और प्रसंगानुकूलता। विषय के अनुरूप इनकी भाषा सरल और गम्भीर बन जाती थी। उन्होंने अपनी भाषा को व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध रखा है। इनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रचुरता के साथ-साथ तद्भव शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। अरबी, फारसी और विदेशी शब्द भी कहीं-कहीं जाने अनजाने प्रयोग में आ गये हैं। कुछ देशज शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। इस तरह से शब्द-प्रयोग की दृष्टि से भाषा समृद्ध है। मुहावरों, लोकोक्तियों का भी प्रयोग जहाँ-तहाँ मिलता है। इनकी भाषा से प्रभावित, उनकी प्रशंसा में डॉ. नगेन्द्र द्वारा कहे गये ये शब्द, इनकी भाषा के सम्बन्ध में काफी कुछ बताते हैं—“इनकी भाषा निरन्तर विकासशील रही है। वास्तव में काव्य-भाषा के रूप में खड़ीबोली के विकास का विभिन्न सोपानों से चिन्हित पूरा इतिहास मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में एकत्र मिल जाता है।”

उनकी काव्य-शैली की एक विशेषता उसकी चित्रात्मकता है। जो कि उनके कलापक्ष का एक सशक्त रूप है। इन्होंने अपने काव्य में अनेक शब्द-चित्र प्रस्तुत किए हैं जो हमें प्रत्यक्ष घटित दृश्य का सा आनन्द और आभास कराते हैं। जैसे—उर्मिला के रूप का चित्रण ('साकेत') शूर्पणखा के रूप का वर्णन ('पंचवटी'), पंचवटी के पास की प्रकृति ('पंचवटी') संध्या के समय के शिविर का वर्णन (सिद्धराज), राहुल के रूप का वर्णन (यशोधरा) आदि। अलंकारों और छन्दों का बड़े सहज ढंग से प्रयोग इनकी कृतियों में दृष्टिगत होता है, जो भाषा को प्रौढ़ तथा समृद्ध बनाती है। इनकी भाषा में लक्षणा और व्यंजना का सौंदर्य भी देखने को मिलता है, जो उनकी भाषा को सशक्त बनाती है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि गुप्त जी एक महान कवि थे हिन्दी साहित्य के खड़ी बोली के इतिहास में, उपेक्षित नारियों के वर्णन के प्रसंग में वे हिन्दी साहित्य-जगत में सदैव स्मरणीय रहेंगे।

रईसों के सपूत : प्रतिपाद्य

द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रकवि की उपाधि से विभूषित हैं। उन्होंने राष्ट्र-प्रेम की अनेक कविताओं में देश के गौरवशाली अतीत का वर्णन प्रभावशाली ढंग से किया है। साथ ही वर्तमान समय की विसंगतियों को भी बखूबी व्यक्त किया है। कवि का मानना है कि रईसों के घर में केवल सपूत ही पैदा होते हैं, क्योंकि उनकी संतानों में दोष निकालने का साहस किसी में नहीं होता। यहाँ कवि बिगड़ैल एवं नालायक संतान को भी सपूत कहकर उन पर करारा व्यंग्य करते हैं। कविता में गुप्त जी ने रोष व्यक्त किया है कि ऐसी कपूत संतान के होने से तो दंपति का निःसंतान होना कहीं बेहतर है। वह पुत्र जो कुल में दोष लगाए, कुलनाशक कहलाता है। फिर भी, ऐसे बिगड़ैल सपूतों एवं उनके घेरे रहने वाले मित्रों-विदूषकों की कथा को याद करते हुए कवि रोष से भर जाता है। सपूतों के बाल्यकाल का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि पूँजीपतियों की संतानें सामान्य बालकों सा जीवन व्यतीत नहीं करती उन्हें अतिरिक्त लाड़-दुलार मिलता है। यहाँ तक कि वे पूरा दिन गोद में ही बिताते हैं। परिणामस्वरूप उनकी उद्दंडता भी अनुपातिक रूप से बढ़ती जाती है।

धनपतियों के यहाँ शिक्षा की भी कोई समस्या नहीं होती क्योंकि उनका जीवन नौकरीपेशा सामान्य मनुष्य की तरह व्यतीत नहीं होना चाहिए। परिवार का बड़ा व्यवसाय ही उनका भविष्य है, इसलिए अविद्या उद्योगपतियों के यहाँ सम्मान पाती है। कवि यहाँ उद्योगपतियों की शिक्षा के प्रति मानसिकता को उजागर करते हैं। साथ ही सामाजिक वास्तविकता भी प्रकट करते हैं कि धन के साथ आदर भी जुड़ा है जिसके पास जितनी धन-दौलत है उसे उतना ही सम्मान प्राप्त होता है। इसलिए रईसों के सपूत अपना बाकी समय तीतर-बटेर लड़वाने एवं बंदूक के दम पर निरीह वन्य प्राणियों के आखेट में व्यतीत करते हैं। अपराध करना उनके लिए सामान्य है। यहाँ तक कि यौवन के नशे में सुरा-सुन्दरी में डूबे रहना ही उन्हें श्रेयस्कर है, इसके लिए पसीने की तरह लहू बहाने में भी पीछे नहीं हटेंगे। गुप्त जी ने तत्सम् प्रधान शब्दावली में रईसों की जीवन-शैली का सुन्दर चित्रण किया है। भाषा में एक प्रवाह है जो आदि से अंत तक बना रहता है। लयात्मकता एवं तुकान्तता इस कविता में सर्वत्र समाहित है।

व्याख्या भाग

1. जब याद आती है बड़ों के चाहे हो कुल-क्षय हे हरे।

शब्दार्थ : सपूतों = अच्छी संतान, यहाँ नालायक संतान हेतु प्रयुक्त हुआ है। विदूषक = हँसाने वाले। दूत = संदेश भेजने वाले। कुल = वंश। क्षय = नाश। हरे = ईश्वर।

प्रसंग : राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युगीन प्रतिनिधि कवियों में गिने जाते हैं। उनकी महत्त्वपूर्ण कृति 'भारत भारती' के वर्तमान खण्ड के अन्तर्गत 'रईसों के सपूत' शीर्षक से निबद्ध कविता वर्तमान की विसंगतियों को उजागर करने वाली कविता है। इसमें कवि ने उद्योगपतियों के भोग-विलास में डूबे नालायक पुत्रों को सपूत कहकर उन पर करारा व्यंग्य किया है जो कहीं-न-कहीं ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत करने वाले रीतिकालीन सामंतों पर भी सटीक बैठता है। गुप्त जी की कविता की यह विशेषता है कि

इतना लंबा दौर बीत जाने पर भी इसकी प्रासंगिकता ज्यों की त्यों बनी हुई है। यहाँ भारत की वर्तमान अधोगति का चित्रण है।

व्याख्या : मैथिलीशरण गुप्त यहाँ रईसों एवं उनके सपूतों के कारनामों को याद करते हुए अपने भाव व्यक्त कर रहे हैं। कवि बिगडैल राजकुमारों एवं सामाजिक दृष्टि से उच्च वर्ग के माने जाने वाले उद्योगपतियों के सपूतों की कहानी एवं जीवन-शैली का स्मरण कर रहे हैं। इन सपूतों के आस-पास सदैव मित्र, साथी, विदूषक एवं दूत इन्हें घेरे रहते थे अर्थात् ये सपूत कहीं भी अकेले नहीं जाते थे, मित्र-मंडली सदैव इनका अनुकरण करती थी। कवि ने हृदय की पीड़ा व्यक्त करते हुए बहुत ही क्षोभ से कहा है कि हे ईश्वर! कभी किसी के घर ऐसी संतान न देना। भले ही कुल का नाश क्यों न हो। ऐसी मान्यता है कि पुत्र वंश को आगे बढ़ाता है इसलिए संतान में सभी पति-पत्नी पुत्र की ही कामना करते हैं किन्तु कवि का मानना है कि ऐसा पुत्र जो वंश का नाम मिट्टी में मिला दे ऐसी संतान से तो निःसंतान होना कहीं बेहतर है।

विशेष : 1. कवि के अनुसार मनुष्य के पास संपत्ति आते ही मित्रजन भी साथ ही आ जाते हैं।

2. कवि की दृष्टि में कुलनाशक पुत्र होने से निःसंतान होना बेहतर है।

3. सपूत कहकर कवि ने बिगडैल संतानों पर करारा व्यंग्य किया है।

4. कवि ने प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है।

5. भाषा सहज, स्वाभाविक एवं प्रवाहमयी है।

6. लयात्मकता एवं तुकान्तता का गुण विद्यमान है।

7. गेयता एवं संगीतात्मकता का समावेश है।

2. यों तो सभी का बीतता है..... घर में अनेक खड़े हुए।

शब्दार्थ : बाल्यकाल = बचपन। विनोद = प्रेम एवं आनंद। उत्पात = उद्दंडता, समस्याएँ।

प्रसंग : मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युगीन प्रतिनिधि कवियों में गिने जाते हैं। उन्होंने रईसों के सपूत कविता में वर्तमान समय में पूँजीपतियों के पुत्र किस प्रकार बचपन से ही सभी सुख सुविधाओं से पूर्ण जीवन जीते हैं इसका वर्णन किया है।

व्याख्या : कवि का मानना है कि बालकों का बचपन आनंद और विनोद के साथ हँसते-खेलते बीतता है किन्तु पूँजीपतियों के बालकों की बात अलग है क्योंकि उनके पास माता-पिता के अतिरिक्त नौकर-चाकरों की भरमार होती है। अतः वे कभी पैर भी धरती पर नहीं रखते। वे सदा गोद में ही सोते एवं जागते हैं। इस तरह प्यार और दुलार में जब वे सपूत थोड़े बड़े हुए तो उनकी शरारतों एवं उद्दंडताओं में भी वृद्धि होने लगी। भाव यह है कि रईसों की संतानों को डाँटने एवं डपटने का साहस किसी में नहीं होता जिससे बच्चा सँभलने के स्थान पर और अधिक बिगड़ता जाता है। स्थिति यह आती है कि बालक घर में उत्पात मचाने के साथ-साथ बाहर भी शैतानियाँ एवं गलत व्यवहार करने लगता है।

विशेष : 1. कवि ने सामान्य बालक एवं रईसों के सपूत में अंतर किया है।

2. सपूत कहकर कवि ने बिगडैल संतानों पर करारा व्यंग्य किया है।

3. प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है।

4. लयात्मकता एवं तुकान्तता का समावेश है।
5. गेयता एवं संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है।

3. श्रीमान् शिक्षा दें उन्हें तो रक्षक तुम्हारे हैं धनी!

शब्दार्थ : श्रीमान् = पिता, घर का स्वामी। लल्ला = बालक। शिक्षे = शिक्षा, विद्या। धनी = रईस। मूर्खते = अविद्या।

प्रसंग : मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युगीन प्रतिनिधि कवियों में अग्रगण्य हैं। रईसों के सपूत कविता में उन्होंने माता-पिता के द्वारा संतान का लालन-पालन किस प्रकार होता है, इसका वर्णन किया है। धनपतियों की शिक्षा के प्रति मानसिकता बहुत अच्छी नहीं होती क्योंकि उन्हें अपनी संतान को व्यवसाय ही करवाना है, नौकरी करवानी। कवि ने इसी पर करारा व्यंग्य किया है?

व्याख्या : गुप्त जी कहते हैं कि बिगड़ैल संतानों को सुधारने का पिता यदि प्रयास भी करे तो माता उनकी सदैव रक्षा करती है। यहाँ कवि सपूतों की शिक्षा के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हैं कि यदि घर का स्वामी अपने सपूतों की शिक्षा पर जोर दें अथवा उन्हें डाँट-डपटकर पढ़ने के लिए जबरदस्ती करें भी तो घर की स्वामिनी और अधिक लाड़-प्यार दिखाते हुए पिता को ही चुप करा देती हैं कि छोटे बच्चों की शिक्षा पर इतना बल न दिया जाए, इन्हें कौन सा नौकरी करनी है। भाव यह है कि जो व्यवसाय पिता कर रहा है, वह तो कोई अनपढ़ भी कर सकता है। अतः शिक्षा-दीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं। कवि पीड़ित होते हुए शिक्षा को व्यर्थ-बताते हैं कि शिक्षा का पर्याय एवं प्रयोजन केवल नौकरी प्राप्त करना मात्र ही रह गया है। शिक्षा मनुष्य का चहुँमुखी विकास भी करती है, इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। वहीं दूसरी ओर अविद्या है जिसकी रक्षा सभी धनी एवं रईस करते हैं। सच ही है समाज भी उसी का आदर करता है जिसके पास धन-दौलत है, व्यक्ति के गुणों का कोई भी सम्मान नहीं करता।

विशेष : 1. कवि ने उद्योगपतियों की मानसिकता को व्यक्त किया है।

2. शिक्षा का प्रयोजन केवल नौकरी तक सीमित होकर रह गया है।
3. समाज की वर्तमान अधोगति का कारण यही है।
4. कवि ने प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है।
5. लयात्मकता एवं तुकान्तता का कवि ने सर्वत्र समावेश किया है।
6. गेयता एवं संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है।

4. तीतर, लवे, मेंढे, पतंगे..... वे न जिस पर आ सकें।

शब्दार्थ : मोल = खरीदकर, बिना बात के। दुर्व्यसन = बुराईयाँ, दोष। विपथ = बुराई का रास्ता, कुमार्ग।

प्रसंग : राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की ख्याति हिन्दी साहित्य में उनकी अनेकानेक महत्त्वपूर्ण रचनाओं के आधार पर मानी जाती है। भारती भारती भी उन्हीं में से एक है। इसमें निबद्ध कविता रईसों के सपूत के अन्तर्गत कवि ने उद्योगपतियों के पुत्रों का जीवन बहुत ही भोग-विलास में बीतता है, इसका विस्तृत वर्णन किया है।

व्याख्या : गुप्त जी कहते हैं कि रईसों की संतानें गरीबों के समान संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत नहीं करती, न ही उन्हें अपने भविष्य को लेकर कोई चिंता होती है। अतः वे शिक्षा प्राप्ति एवं रोजगार प्राप्ति के प्रति कभी गंभीर नहीं होते। वे केवल तीतर और बटेर को आपस में लड़वाने में ही आनंद प्राप्त करते हैं। बहुत अधिक हुआ तो पतंग उड़ा ली और उसी में हार-जीत का मजा ले लिया। इससे अधिक मेहनत करना वे नहीं जानते। उनके पास यदि करने को और कुछ न हो तो वे दूसरों के व्यर्थ-झगड़ों में भी अपना समय व्यतीत करते हैं। ऐसा माना जाता है कि आवश्यकता से अधिक धन की प्राप्ति सदैव ऐब एवं दुर्व्यसन ही लाती है। पैसे के अहं में मनुष्य का दिमाग पूरी तरह नशे में डूब जाता है। रईसों के सपूतों की समान स्थिति भी कवि ने वर्णित की है कि बुराई का ऐसा कोई भी मार्ग नहीं जिस पर वे सपूत न चले हों अर्थात् ऐसा कोई अपराध नहीं जो उन्होंने न किया हो।

- विशेष : 1. कवि ने सपूतों के शौक एवं बुरी आदतों का वर्णन किया है।
 2. अत्यधिक धन के साथ मद एवं दुर्व्यसन का आना स्वाभाविक है।
 3. प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है।
 4. भाषा में सहजता एवं स्वाभाविकता विद्यमान है।
 5. लयात्मकता एवं तुकान्तता का समावेश है।
 6. कविता का मुख्य गुण गेयता एवं संगीतात्मकता भी सर्वत्र देखा जा सकता है।

5. निकले कि फिर दस पाँच..... किस जन्म का, क्या वैर है?

शब्दार्थ : वन-जन्तु = जंगली जानवर। घातक = जानलेवा, नुकसानदायक। बैट = दुश्मनी। अभागे = भाग्यहीन।

प्रसंग : द्विवेदीयुगीन प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त का हिन्दी साहित्य में अप्रतिम स्थान है। रईसों के सपूत कविता के अन्तर्गत कवि ने धनपतियों के राजसी शौक का वर्णन किया है, जिस प्रकार राजाओं के समय में आखेट गर्व का विषय माना जाता था, उसी प्रकार सपूतों के लिए भी वन्य पशुओं पर बल प्रयोग करना अहं की तुष्टि के लिए आवश्यक है।

व्याख्या : गुप्त जी वर्णन करते हैं कि सपूत जब बड़े हो गए तो तीतर-बटेर लड़वाने के स्थान पर कबूतरों एवं चिड़ियों को मारने में अपनी शान समझने लगे। भले ही वन्य पशुओं की हत्या पर कितने ही प्रतिबंध क्यों न लगे हो किन्तु सपूतों के लिए बन्दूक लेकर घर से निकलने का अर्थ है वन्य-पशुओं पर अपने बल का प्रदर्शन। लेकिन यह समझना कोई नहीं चाहता कि यह प्रदर्शन इन निरीह जन्तुओं के लिए कितना प्राणघातक है। सपूतों के लिए यह केवल शाम के समय घूमने निकलना भर है, परन्तु इससे उन जीवों की जिन्दगी समाप्त हो जाती है। कवि यहाँ प्रश्न करते हैं कि क्या मात्र शौक पूरा करने के लिए निरीह प्राणियों की हत्या युक्तिसंगत है। न जाने इन प्राणियों के प्रति सपूतों की कौन सी शत्रुता है, जिस कारण वे इनके प्राण ले रहे हैं।

- विशेष : 1. यहाँ कवि ने सपूतों के शौक एवं बुरी आदतों का वर्णन किया है।
 2. निरीह वन्य प्राणियों पर बल प्रयोग सदैव होता रहा है?

3. भाषा में प्रश्नात्मक शैली का प्रयोग है।
 4. भाषा में सहजता एवं प्रवाहमयता विद्यमान है।
 5. लयात्मकता एवं तुकान्तता का समावेश है।
 6. कविता का मुख्य गुण गेयता एवं संगीतात्मकता भी सर्वत्र समाहित है।
6. आया जहाँ यौवन उन्हें..... बहाने का जुड़े।

शब्दार्थ : भूत = नशा। करणार्थ = करने हेतु। अपव्यय = फिजूलखर्ची। शशि = चंद्रमा। चट = गुप्तचर। लोहू = रक्त। जुड़े = इकट्ठा होना।

प्रसंग : राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवियों में गिने जाते हैं। 'भारत-भारती' के वर्तमान खण्ड में कवि ने तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन किया है जो आज भी पूर्णतः प्रासंगिक है। कवि का मानना है कि जब मनुष्य को अत्यधिक धन प्राप्ति हो जाती है तो वह भोग-विलास में डूब जाता है यही स्थिति उसकी संतान की भी होती है।

व्याख्या : गुप्त जी कहते हैं कि अब सपूत यौवन को प्राप्त हो गए हैं अतः उन पर यौवन का नशा सर चढ़कर बोलने लगा है। यौवन आते ही उनकी फिजूलखर्ची भी बढ़ गई। यौवन उम्र का वह पड़ाव है जहाँ जीवन की सार्थकता केवल सुरा और सुंदरी में ही दिखाई देती है। इस पर यदि रईस पिता की संतान हो तो यह नशा और अधिक बढ़ जाता है। सपूतों ने भी अपने पंख सुंदरियों के लोक में फैलाने आरंभ कर दिए। अभी तक तो वन्य पशुओं पर बल प्रयोग होता था किन्तु अब सुन्दरी प्राप्ति के लिए भी बल प्रदर्शन आवश्यक हो गया। कवि ने यहाँ सपूतों को गुंडा कहकर संबोधित किया है। भाव यह है कि वे गुंडे अपराधियों के समान सुन्दरी की प्राप्ति के लिए रक्त बहाने को भी तत्पर होने लगे।

- विशेष :**
1. सपूतों की आपराधिक प्रवृत्ति का वर्णन किया गया है।
 2. अत्यधिक धन की प्राप्ति मनुष्य में तामसी वृत्ति को जन्म देती है।
 3. कवि ने वर्तमान की अधोगति का चित्रण किया है।
 4. भाषा सहज, स्वाभाविक एवं प्रवाहमय है।
 5. लयात्मकता एवं तुकान्तता का समावेश है।
 6. गेयता एवं संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्रश्न (क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अपने शब्दों में दीजिए—

1. गुप्त जी की भाषा-शैली का विवेचन कीजिए।
2. गुप्त जी की कविताएँ देश भक्ति परक हैं, प्रकाश डालिए।
3. गुप्त जी के काव्य-सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।
4. गुप्त जी ने समाज एवं राजनीति पर करारा व्यंग्य किया है, कथन के आलोक में रईसों के सपूत कविता पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न (ख) निम्नलिखित शब्दों का अर्थ स्पष्ट कीजिए—

1. कुल-क्षय, लवें, विदूषक, शशि-लोक, दुर्व्यसन

प्रश्न (ग) निम्नलिखित प्रक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए—

1. होवें न ऐसे पुत्र चाहे हो कुल-क्षय हे हरे।
2. लो मूर्खते! जीती रहो, रक्षक तुम्हारे हैं धनी।
3. पथ या विपथ है कौन ऐसा वे न जिस पर आ सके।
4. गुंडे “पसीने की जगह लोहू” बहाने को जुड़े।

2. 'बीती विभावरी जागरी' : जयशंकर प्रसाद

—डॉ. भवानी दास
मुक्त शिक्षा विद्यालय

आधुनिककाल के जिन साहित्य-सर्जकों ने खड़ी-बोली की श्रवृद्धि के साथ मौलिक साहित्य का सृजन कर उसे सार्वभौमिक, सार्वदेशिक और सार्वकालिक स्तर का बनाया, उनमें प्रतिभावान जयशंकर प्रसाद जी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

कवि-परिचय

श्री जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल दशमी संवत् 1946 (सन् 1889) को सुँघनी साहु नाम से प्रसिद्ध काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ था। पारिवारिक कठिनाइयों के कारण इनकी स्कूली शिक्षा अधिक नहीं हो सकी, इन्होंने आठवीं कक्षा तक अंग्रेजी की शिक्षा स्कूल में प्राप्त की और हिन्दी, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओं का अध्ययन घर पर ही किया। इनके परिवार में प्रारम्भ से ही साहित्यिक वातावरण था। पिता देवीप्रसाद जी साहित्य-प्रेमी थे। अतः घर पर ही साहित्यिक-गोष्ठियाँ करते थे, जिससे शैशवावस्था से ही उनमें साहित्याभिरुचि जागृत हो गई थी। आगे चलकर वेद, पुराण, इतिहास, पुरातत्व, साहित्य, दर्शनशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया। यही कारण है कि इनके साहित्य में सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बहुत पुष्ट है।

कहा जाता है कि आठ-नौ वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने 'अमरकोष' और 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' को कंठस्थ कर लिया था, जो इनकी असाधारण प्रतिभा का परिचायक है और आठ-नौ वर्ष की ही अल्पायु में इन्होंने ब्रजभाषा में प्रथम सवैया लिखा। संवत् 1963 में 'भारतेन्दु' पत्रिका में पहली बार इनकी कविता, कहानी, नाटक और निबन्ध आदि प्रकाशित होने लगे थे।

साहित्य-सर्जन में इनकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी। वे एक साथ महाकवि, श्रेष्ठ कथाकार, मौलिक एवं सुलझे हुए निबन्धकार, संस्कृति-चेता, विचारक एवं इतिहास के उद्धारक थे। इसीलिए इन्होंने इतिहास, पुराण, राष्ट्रप्रेम, समाज एवं जीवन की समस्याओं की पृष्ठभूमि पर अपने साहित्य का सृजन किया। शुरु में इन्होंने ब्रजभाषा में रचना, प्रारंभ की लेकिन बाद में खड़ी बोली में रचना करने लगे। इनके काव्य-ग्रंथों में 'चित्राधार', 'काननकुसुम', 'झरना', 'आँसू', 'लहर', तथा 'कामायनी प्रमुख हैं, 'अजातशत्रु', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'जनमेजय का नागयज्ञ; विशाख; 'राज्यश्री' - इनकी नाट्य कृतियाँ हैं। 'एकघूंट' तथा 'कामना' इनके प्रसिद्ध एकांकी हैं। 'कंकाल', 'तिल्ली', 'इरावती' इनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं। इनकी कहानियाँ 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी', 'इन्द्रजाल' में संग्रहित हैं। इसके अतिरिक्त 'इन्दु', 'हंस' और 'जागरण' आदि पत्रिकाओं का भी इन्होंने सम्पादन किया।

धीरे, गम्भीर प्रकृति के रससिद्ध कवि प्रसाद में एक अपूर्व बात यह थी कि इन्होंने साहित्य की जिस भी विद्या पर अपनी लेखनी चलाई उसे एक नई दिशा दी। वे एक ओर छायावादी नवीन विचारधारा के कवि थे, तो दूसरी ओर अपने नाटकों, कहानियों आदि के माध्यम से अपने देश के अतीत को साकार करते हुए सामयिक और राजनीतिक जागरण में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान किया। वास्तव में अगर देखा जाय तो

साहित्य-क्षेत्र में प्रसाद जी का आगमन उस समय हुआ जब स्वतंत्रता-संग्राम का जुनून सर्वत्र छाया हुआ था। लोग विदेशी-सत्ता की जड़ें उखाड़ फेंकने का अवसर ढूँढ रहे थे। लोगों में नैतिक-मूल्यों की पुर्नस्थापना और अपने स्वर्णिम अतीत के प्रति आकर्षण जागना आरंभ हो चुका था, प्रसाद जी ने अपनी साहित्यिक-कृतियों के माध्यम से जन-मानस में भारत के स्वर्णिम अतीत के प्रति विश्वास तथा गौरव का भाव जगाया और यही अतीत का गौरवपूर्ण पुनः आख्यान और नवीन मानवीय-मूल्यों की स्थापना उनके साहित्य का मूल-स्वर बना।

‘बीती विभावरी जाग री’ - प्रतिपाद्य या सार

‘बीती विभावरी जाग री’ प्रातःकालीन सौन्दर्य का चित्रण करने वाली कविता है। इसमें कवि प्रसाद ने उषा काल के समय प्रकृति के विभिन्न उपादानों के क्रियाकलाप का वर्णन किया है। प्रातःकाल सूर्योदय के साथ ही रात का अन्धकार कम होने लगता है। आकाश में छाए सभी नक्षत्रों की दीप्ति क्षीण होने लगती है। पक्षी अपने-अपने घोंसलों में सूर्य की प्रथम रश्मि का आगमन होते देख कलरव करने लगते हैं। सारा वातावरण उनकी मधुर ध्वनि से संगीतमय हो उठता है। शीतल-मंद पवन के झोंकों से लताएँ और वृक्षों की डालियाँ झूमने लगती हैं। सम्पूर्ण दृश्य बहुत ही मनमोहक एवं आकर्षक हो जाता है। ऐसी सुन्दर बेला में भी वह रमणी जो रात के अंतिम पहर तक भोग-विलास में मग्न थी, आलस्य के कारण आँखें मूँदे सोई है। उसके ओठों में रात का संगीत और केशों में सुगन्धि अभी भी बसी हुई है। कवि युवती से तथा समस्त भारतवासियों से आग्रह करता है कि रात्रि अब समाप्त हो चुकी है। अतः अब उन्हें भोग-विलास को त्यागकर अपने कर्म में लीन हो जाना चाहिए तथा अपने कर्तव्य को पहचानकर नवीन स्फूर्ति एवं ऊर्जा के साथ राष्ट्र के उत्थान हेतु स्वतंत्रता-संग्राम में बढ़-चढ़कर भाग लेना चाहिए। इस प्रकार यहाँ एक ओर प्रातः काल की शांत बेला का भावमय चित्रण है तो दूसरी ओर यह जागरण गीत भी है जिसमें समस्त देशवासियों की सुप्त-शक्ति और चैतन्य का आह्वान है।

व्याख्या भाग

1. बीती विभावरी जाग री..... मधु मुकुल नवल रस गागरी।

शब्दार्थ : विभावरी = रात्रि। अम्बर = आकाश। पनघट = कुआँ, जहाँ स्त्रियाँ पानी भरती हैं। घट = घड़ा। नागरी = चतुर। स्त्री = रमणी। खग = पक्षी। कुल = समूह। कल-कल = कलरव। किसलय = पल्लव, नये पत्ते। मुकुल = अधखिला फूल। नवल = नया। गागरी = मटका।

प्रसंग : महाकवि जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख आधार स्तंभ माने जाते हैं। ये प्रकृति-सौंदर्य के चितरे हैं। प्रकृति के अनेकानेक रूपों का चित्रण उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। ‘लहर’ संग्रह से उद्धृत कविता ‘बीती विभावरी जाग री’ में कवि प्रसाद ने प्रातः कालीन नैसर्गिक सुषमा एवं सौन्दर्य का चित्रांकन किया है। कवि अपनी प्रियतमा को जगाता है जो पूर्व रात्रि के रस-रंग से शिथल एवं बेसुध होकर सो रही है। वह उससे राग-रंजित ऊषा के सौंदर्य को देखने के लिए कहता है।

व्याख्या : कवि प्रसाद वर्णन करते हैं रात का अंतिम पहर समाप्त हो चुका है। पूर्व दिशा में सूर्य की किरणें भी संसार को आलोकित करने लगी हैं। अतः सोने का समय बीत चुका है। हे सोए हुए लोगों! नेत्र खोलो, नई ऊर्जा से अपने-अपने कर्म में लीन हो जाओ।

आकाश में रात भर चमकने वाले नक्षत्रों का प्रकाश प्रातः काल होते ही मलिन पड़ रहा है। ऐसा लगता है जैसे ऊषा रूपी चतुर नायिका जो न केवल सौन्दर्य और लावण्य से युक्त है बल्कि कर्मठ भी है, वह अपने घड़े को लेकर पनघट पर जल भरने चल पड़ती है और धीरे-धीरे सभी तारे रूपी घड़ों को अंबर रूपी पनघट में डुबो देती है। धीरे-धीरे सारा संसार भी क्रियमाण हो उठता है। लोग अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कर्म में लग जाते हैं। पक्षीगण मधुर कलरव करने लगते हैं। शीतल मन्द सुगन्धित पवन का स्पर्श पाकर नव पल्लव झूमते प्रतीत होते हैं। कोमल लतिकाएँ पुष्पित हो जाती हैं तथा पुष्पों की सुरभि से मतवाले भौरै उन पर गुंजार करने लगते हैं।

विशेष : 1. प्रातः कालीन बेला का सुन्दर चित्रण किया गया है।

2. उषा तथा लतिका को नागरी कहकर उनका मानवीकरण किया गया है।

3. आकाश रूपी पनघट तथा तारे रूपी घड़े में रूपक अलंकार है।

4. खग-कुल, कुल-कुल में यमक अलंकार है।

5. कुल-कुल-सा में उपमा अलंकार है।

6. भाषा सहज, स्वभाविक एवं प्रवहमान है।

7. कवि ने नेत्र (चाक्षुष) बिंब की सुन्दर व्यंजना की है।

2. अधरों में राग अमन्द पिए.....आँखों में भरे विहाग री।

शब्दार्थ : अधर = ओंठ। राग = मधुर गान, संगीत। अमंद = अविरल। निरंतर, अलक = केशराशि। आली = सखी। विहाग = एक राग जो विलास का प्रतीक है।

प्रसंग : जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख आधार स्तंभ माने जाते हैं। 'लहर' संग्रह से उद्धृत कविता 'बीती विभावरी जाग री' में कवि ने प्रातःकालीन बेला का सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया है। यहाँ नायिका रात्रि के क्रीड़ा-विलास के कारण प्रातःकाल होने पर भी निद्रा में लीन है, दूसरी ओर भारतवासी भोग-विलास की निद्रा में बेसुध पड़े हैं, अपने देश और अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन है।

व्याख्या : कवि प्रसाद कहते हैं कि रात-भर क्रीड़ा में लीन रहने के कारण नायिका आलस्य में सोई पड़ी है। उसके अधखुले ओठों को देखकर लगता है कि वह रात्रि में राग (गीत) गाते-गाते ही सो गई थी और अब भी वह राग उसके ओंठ पर निरंतर चल रहे हैं। उसने केशों में जो इत्र लगाया था उसकी सुगन्ध के झोंके आसपास के वातावरण को महका रहे हैं। उसके नेत्रों की अलसाई चितवन को देखकर लगता है कि वह अभी भी विलास के प्रतीक राग को अपने नेत्रों में बसाए हुई है अर्थात् भोग-विलास के स्वप्न में लीन है।

कुछ आलोचकों के अनुसार इस कविता में राष्ट्रीय पुनर्जागरण का संदेश भी निहित है। यहाँ कवि भारतवासियों को उद्बोधित करते हैं कि निराशा-जनित अन्धकार दूर हो जाने पर उन्हें जागृत और सक्रिय हो जाना चाहिए। अपने भोग-विलास और आलस्य को दूर करके वर्तमान परिस्थिति को पहचान कर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना चाहिए।

- विशेष : 1. रात्रि के भोग-विलास के पश्चात् प्रातः के समय कर्म में लीन होने का सन्देश निहित है।
2. अर्द्ध-निद्रा में लीन नायिका का नेत्र-बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।
 3. 'री' के माध्यम से अपनत्व बोध की व्यंजना की गई है?
 4. भाषा सहज स्वाभाविक एवं प्रवहमान है।
 5. तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति के अनुसार स्वातंत्र्य-चेतना का संदेश भी दिया गया है।
 6. कोमलकांत पदावली के भीतर जागरण परक अर्थ की व्यंजना कवि की विशेषता है।

‘हिमालय के आँगन में’ : प्रतिपाद्य या सार

छायावादी काव्य के आधार स्तंभ महाकवि जयशंकर प्रसाद प्रकृति-सौंदर्य के चितरे हैं। राष्ट्रप्रेम एवं देश-भक्ति परक अनेक कविताओं में इन्होंने भारत के गौरवशाली अतीत का वर्णन बहुत सुंदर ढंग से किया है। कवि का मानना है कि भारत के गौरव हिमालय पर्वत के आँगन में उषा ने हँसकर किरणों का उपहार प्रदान किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य के उदय होते ही समस्त प्रकृति भी हिमालय का शृंगार करके भारतवर्ष का अभिनंदन कर रही हो। जिस प्रकार सूर्य के उदित होते ही चारों तरफ प्रकाश फैल जाता है उसी प्रकार भारतीयों ने ही समस्त संसार में अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करके ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाया। भारत देश की महिमा इतनी अपार है कि विश्व को संगीत का अनमोल वरदान यहीं से प्राप्त हुआ, स्वयं देवी सरस्वती ने सभी को संगीत की सौगात दी जिससे सात समुद्रों में संगीत प्रस्फुटित हुआ और सामवेद का निर्माण हुआ। भारतीयों ने ही प्रलय के दौरान सृष्टि के बीजों को संचित किया और नवसृष्टि के निर्माण की नींव रखी। ये भारतीय ही थे जिन्होंने सारे संसार को दया, सत्य, अहिंसा और करुणा जैसे मानवीय गुणों की शिक्षा दी। मानव-कल्याण के लिए एवं राक्षसों का संहार करने के लिए इन्होंने अपनी हड्डियाँ तक दान में दे दी। भारत पर कई बार विदेशियों ने आक्रमण किया फिर भी भारत की अखंडता कायम रही। भारत के सम्राट इतने महान थे कि वे बौद्ध भिक्षु हो गए और जगह-जगह जाकर सभी को धर्म और दया का पाठ सिखलाया। भारतीय इतने महान हैं कि शत्रु पर भी दया करके उसे प्राणों का दान देते हैं। आज चीन, जापान में जो धर्मोन्नति निरंतर फैली हुई है, वह भारत की ही देन है। यहाँ तक कि श्री लंका को भी पंचशील का ज्ञान हमारे देश ने कराया जिससे वह उन्नति कर सका।

भारत देश की प्रकृति अनोखी है उसने देशवासियों को इतनी संपदा प्रदान की है कि हमें किसी से कुछ माँगने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हम सब आर्य हैं जो यहाँ कहीं बाहर से नहीं आए थे बल्कि हम यहाँ के मूल निवासी हैं। सभी भारतवासी चरित्र को महत्ता देते हैं इसलिए भुजाओं में शक्ति एवं साहस होते हुए भी सभी से नम्रतापूर्वक व्यवहार करते हैं। उनके हृदय में देश के गौरव के लिए देशप्रेम की भावना भरी हुई है। वे कभी याचक को दान देने में पीछे नहीं हटते। ‘अतिथि देवो भवः’ की संकल्पना का भारतीयों ने सदैव पालन किया है। भारत के गौरवशाली अतीत को कभी भुलाया नहीं जा सकता क्योंकि प्रतिज्ञा एवं वचन का पालन करना हमारी महती विशेषता रही है। इतने वर्षों बाद आज भी हमारी रगों में वही रक्त, साहस, शांति एवं ज्ञान लहू की तरह विद्यमान है। हम सभी भारतवासी देश के गौरव और उसकी अस्मिता की रक्षा के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने को सदैव तत्पर रहते हैं। पहले भी रहते थे और आगे भी रहेंगे।

कवि ने भारतमाता के वीर पुत्रों द्वारा देश-सेवा में निरंतर लीन रहने का वर्णन किया है। भाषा सहज एवं सरल है। कहीं भी लय का तुकबन्दी में कोई त्रुटि नहीं है। प्रवाहमयता का गुण विद्यमान है।

व्याख्या भाग

1. हिमालय के आँगन में उसे अखिल संसृति हो उठी अशोक।

शब्दार्थ : प्रथम = पहली। अभिनन्दन = स्वागत। हरिक-हार = हीरों का हार। आलोक = प्रकाश। व्योम-तम = आकाश में फैला अंधकार।

प्रसंग : आधुनिक काल की छायावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद प्रकृति-सौंदर्य के चितेरे हैं। राष्ट्रप्रेम एवं प्रकृति इनके काव्य में अनेकानेक रूपों में व्यक्त हुई हैं। प्रस्तुत कविता के द्वारा कवि ने भारत के गौरवशाली अतीत का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है। यहाँ भारतीयों के मन में अपने देश के प्रति प्रेम व आदर का भाव निर्मित किया गया है। साथ ही त्याग, देशप्रेम एवं देश पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने का संदेश दिया गया है।

व्याख्या : कवि जयशंकर प्रसाद करते हैं कि भारत के गौरव हिमालय पर्वत के आँगन में प्रातः कालीन सौंदर्य ने हँसकर किरणों का उपहार प्रदान किया है। भारत देश का अभिनन्दन करते हुए उसे हीरों का हार पहनाया। भाव यह है कि जब सूर्योदय होता है तब उषारूपी किरणें हिमालय के आँगन में आकर उसका शृंगार करती हैं, मानों वह भारत का अभिनन्दन करते हुए उसे हीरों का हार पहना रही हैं। प्रातःकाल में किरणों के फैलने से सभी भारतीय ज्ञान रूपी प्रकाश से जगमगा उठे। वे न केवल जागे बल्कि उन्होंने दुनिया में फैले अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करके सभी को अपने ज्ञान से प्रकाशित किया। भाव यह है कि भारत में ही सर्वप्रथम ज्ञान का उदय हुआ उसके बाद भारतीयों ने ही सारे संसार में ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाने का स्तुत्य कार्य किया। भारतीयों के इसी महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण ही विश्व रूपी आकाश में फैला अंधकार नष्ट हुआ और समस्त संसार शोक, दुख आदि से मुक्त हुआ।

विशेष : 1. कवि ने भारत के गौरवशाली अतीत का सुंदर वर्णन किया है।

2. कवि के अनुसार भारतीयों ने ही पूरे विश्व में ज्ञान का प्रसार किया है।

3. प्रकृति भी भारत के गौरव हिमालय का शृंगार स्वयं करती है।

4. देश-प्रेम का भाव निहित है।

5. भाषा सहज, स्वाभाविक एवं प्रवहमान है।

6. नेत्र-बिम्ब की सुंदर व्यंजना की गई है।

7. लयात्मकता एवं तुकान्तता का गुण विद्यमान है।

2. विमल वाणी ने वीणा लीवरुण-पथ पर हम बढ़े अभीत।

शब्दार्थ : कर = हाथ। सप्रीत = प्रेम के साथ। सप्तस्वर = सात सुर। अभीत = बिना भयभीत हुए। साम = सामवेद। वरुण-पथ = जल का मार्ग।

प्रसंग : जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख आधार स्तम्भ माने जाते हैं। इनकी कविता में देश-प्रेम एवं प्रकृति-सौंदर्य के भाव मुख्य रूप से व्यंजित हुए हैं। प्रस्तुत कविता में कवि ने भारतीयों के महत्त्वपूर्ण

योगदान का वर्णन किया है। कवि का मानना है कि प्रलय के पश्चात् भारतीयों ने ही सृष्टि के बीज संचित कर फिर से संसृति का पुनर्निर्माण किया है।

व्याख्या : कवि प्रसाद जी का मानना है कि भारत देश की महिमा इतनी प्रभावशाली है कि विश्व को संगीत का अनमोल वरदान यहीं से प्राप्त हुआ है। संगीत की देवी माँ सरस्वती ने अपने एक हाथ में वीणा व दूसरे हाथ में कमल धारण करके प्रेम से सभी को संगीत की सौगात दी। इसी कारण सातों समुद्रों में संगीत के सात स्वर प्रस्फुटित हुए और संगीत के सामवेद का निर्माण हुआ। यह वही वेद है जिसने समस्त विश्व को संगीत की ध्वनियों से परिचित करवाया। ये भारतीय ही थे। प्रलय के दौरान स्वयं नाव पर बैठकर प्रलय के घोर शीत को अपने ऊपर झेला जिससे कि सृष्टि से बीज को बचाया जा सके। यह ध्यातव्य है कि प्रलय में कोई भी जीवित नहीं बचा, किन्तु हमारे ऋषि-मुनि भयंकर जलमार्ग पर बिना भयभीत हुए आगे की ओर बढ़ते रहे। इन्होंने ही सृष्टि के बीजों को संग्रहीत करके अपने पास सुरक्षित रखा जिससे नवसृष्टि का निर्माण हो सके।

विशेष : 1. विश्व को संगीत की सौगात सर्वप्रथम भारतीयों ने दी।

2. प्रलय के पश्चात् भारतीयों ने ही सृष्टि के नवनिर्माण का स्तुत्य कार्य किया।

3. देश-प्रेम का भाव निहित है।

4. भाषा सहज, स्वाभाविक एवं प्रवहमान है।

5. नेत्र-बिम्ब की सुन्दर व्यंजना की गई है।

6. लयात्मकता एवं तुकान्तता का गुण विद्यमान है।

3. सुना है वह दधीचि का त्याग.....मग्न रत्नाकर में वह राह।

शब्दार्थ : पवि = रक्त। सिंधु = सागर। अस्थि = हड्डियों का दान। भग्न = टूटा हुआ। मग्न = लीन। रत्नाकर = समुद्र। पुरंदर = इन्द्र।

प्रसंग : जयशंकर प्रसाद छायावाद के आधार स्तंभ हैं। देश-प्रेम की कविताओं के अन्तर्गत कवि ने भारत के गौरवमयी अतीत का गुणगान किया है। प्रस्तुत कविता में कवि ने वर्णित किया है कि प्राचीन ऋषि-मुनियों ने समाज-कल्याण के लिए अपना सर्वस्व दान में दे दिया।

व्याख्या : कवि प्रसाद जी का मानना है कि भारतीयों ने ही संसार को प्रेम, दया, सत्य, शील, अहिंसा, करुणा जैसे मानवीय गुणों का पाठ पढ़ाया। सारा संसार ऋषि दधीचि के उस महान त्याग से परिचित है जिन्होंने राक्षसों का संहार करने के लिए अपनी हड्डियाँ तक दान में दे दी थीं। स्वयं देवता भी उनके परित्याग के सम्मुख नतमस्तक हो गए। भाव यह है कि हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि मानव-जाति के कल्याण के लिए बड़े से बड़ा दान देने में भी पीछे नहीं हटते। हमारे पूर्वजों का हृदय सागर-सा विस्तृत और विशाल है। स्वयं राम ने भी अथाह समुद्र में मार्ग बनाकर समस्त सृष्टि को मनुष्य के मजबूत इरादों से परिचित कराया। भाव यह है कि सामान्य मनुष्य यदि अपने हौंसलों को मजबूत कर ले तो वह कठिन एवं असंभव कार्य को भी संभव कर लेता है।

विशेष : 1. भारतीयों की दानवीरता की प्रशंसा की गई है।

2. स्वयं देवताओं के मुख से भारतीयों का गौरवगान करवाया है।
 3. भारत-महिमा का वर्णन किया गया है।
 4. भाषा सहज, स्वाभाविक एवं प्रवहमान है।
 5. लयात्मकता एवं तुकान्तता का गुण विद्यमान है।
4. धर्म का ले लेकर जो नाम..... दया दिखलाते घर-घर घूम।

शब्दार्थ : हमीं = भारतवासी। धरा = धरती। भिक्षु = संन्यासी। सम्राट = राजा।

प्रसंग : जयशंकर प्रसाद छायावाद के आधार स्तंभ माने जाते हैं। इन्होंने देश-प्रेम एवं प्रकृति सौंदर्य के प्रति अपने भाव व्यक्त किए हैं। प्रस्तुत कविता में कवि ने भारतीयों द्वारा शांति-संदेश प्रेषित करने का भाव व्यक्त किया है। यहाँ भारतीय राजाओं ने देश-विदेश में अपने धर्म का जो प्रचार किया उसकी महिमा का गान कवि ने गाया है।

व्याख्या : कवि प्रसाद कहते हैं कि धर्म के नाम पर बलि लेने की जो प्राचीन प्रथा प्रचलन में थी उसे हमीं ने बंद करवाया। ये ही वे भारतवासी थे जिन्होंने सारे संसार में अमन और प्रेम का संदेश फैलाया। भाव यह है कि संसार में जो युद्ध की विभीषिका फैली हुई थी, पृथ्वी विजय के नाम पर सभी दूसरे देशों पर आक्रमण कर रहे थे उसके प्रति हमारे पूर्वजों ने असहमति प्रकट की तथा समूची मानवता को सुख और शांति का संदेश प्रदान कर स्वयं भी आनंद की प्राप्ति की। प्रसाद जी का मानना है कि दूसरे राजा को शस्त्र-बल से हराकर विजय प्राप्त करना सही मायने में विजय नहीं होती बल्कि किसी के हृदय पर राज करना ही सच्ची विजय है, हमारे पूर्वजों ने पूरी धरती पर अपने धर्म का प्रचार करके सभी के हृदयों को जीत लिया था। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि भारत देश पर अनेक आक्रमण हुए किन्तु भारत ने सभी को सिखलाया कि यदि आप अपने धर्म पर अडिग हैं तो आपकी विजय सुनिश्चित है। कवि ने यहाँ गौतम बुद्ध, सम्राट अशोक आदि आदर्श पुरुषों का उल्लेख किया है जो स्वयं सम्राट होते हुए भी, जिन्होंने भिक्षुक का जीवन व्यतीत किया और जगह-जगह बौद्ध धर्म का प्रचार करके सबको यह शिक्षा दी कि जीवन का वास्तविक आनंद संतुलन में है, मनुष्य को अपना जीवन सदैव अहिंसा एवं परोपकार का मार्ग अपनाकर व्यतीत करना चाहिए।

विशेष : 1. कवि ने भारतवासियों द्वारा सुख और शांति का संदेश फैलाने का उल्लेख किया है।

2. मानव-कल्याण के लिए भारतीय राजाओं के बौद्ध भिक्षुक का-सा जीवन व्यतीत करने का उल्लेख है।
3. धर्म की महत्ता पर बल दिया गया है।
4. भाषा तत्सम शब्दावली प्रधान है।
5. लयात्मकता एवं तुकान्तता का गुण विद्यमान है।
6. पंक्तियों में सहजता एवं प्रवाहमयता विद्यमान है।

5. यवन को दिया दया का दान..... कहीं से हम आए थे नहीं।

शब्दार्थ : सिंहल = श्री लंका देश, गौरी-यवन शासक।

प्रसंग : यह कविता हिमालय के आँगन में जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखी गई है तथा 'भारत महिमा' में संकलित है। इसमें कवि कहते हैं कि हम भारतीयों ने पूरे विश्व में ज्ञान का प्रसार किया है। आवश्यकता पड़ने पर हमने समस्त संसार को दया और धर्म दोनों ही सिखलाए हैं।

व्याख्या : प्रसाद जी कहते हैं कि हमने यवनों पर दया दिखलाई। सभी जानते हैं कि यवन शासक सेल्यूकस को पराजित करने के बाद भी चन्द्रगुप्त ने उसे मारा नहीं बल्कि दया करके जीवित छोड़ दिया। आज चीन, जापान जिस धर्म को पूरी तरह आत्मसात् किए हुए हैं, वह बौद्ध धर्म हम भारतीयों की ही देन है। यह सर्वज्ञात है कि हमारी स्वर्णभूमि में गौतम बुद्ध जैसे रत्न पैदा हुए, उन्होंने ही बुद्ध धम्म और संघ त्रिरत्नों का प्रचार बर्मा आदि देशों में किया। उन्होंने ही सिंहल अर्थात् श्री लंका को पंचशील का ज्ञान कराया जिससे यह देश भी उन्नति कर सके। भारत देश में प्रकृति अपने संपूर्ण सौंदर्य के साथ विराजती है। यहाँ जलवायु एवं प्रकृति के वैविध्य के कारण अनाज एवं खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में हैं। अतः हमें किसी से कुछ भी माँगने की आवश्यकता नहीं पड़ती बल्कि हम दूसरे देशों को कुछ न कुछ निर्यात ही करते हैं। सभी भारतीय यहाँ के मूल निवासी हैं। हम यहाँ पर किसी अन्य स्थान से नहीं आए बल्कि इसी पवित्र भारत-भूमि की हम संतान हैं। भाव यह है कि यह धरती हम सभी की मातृभूमि है।

विशेष : 1. यहाँ श्री लंका और चीन जैसे देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार का उल्लेख किया गया है।

2. यवनों को परास्त करने के पश्चात् जीवित छोड़ने का वर्णन है।

3. भारतीयों के विशाल हृदय की महिमा का गौरवगान गाया गया है।

4. भाषा सहज, स्वाभाविक एवं प्रवहमान है।

5. लयात्मकता एवं तुकांतता का समावेश है।

6. जातियों का उत्थान-पतन किसी को देख न सकेसे विपन्न।

शब्दार्थ : चरित = चरित्र। पूत = पुत्र। भुजा = बाहु। संपन्न = समृद्ध। विपन्न = गरीब, विपत्ति से जूझता हुआ।

प्रसंग : छायावादी काव्य को समृद्ध करते हुए जयशंकर प्रसाद ने प्रकृति एवं देश प्रेम की अनेक कविताओं का निर्माण किया है। भारत-महिमा उनकी देश-भक्ति परक कविता है। इसमें कवि का मानना है कि हमें सदैव अपने देश और संस्कृति पर गर्व करना चाहिए। भारत वर्ष में अनेक जातियों का समय-समय पर उत्कर्ष भी हुआ और वे समाप्त भी हुईं, फिर भी भारतीयों ने मानवता से अपनी आस्था कभी समाप्त नहीं होने दी।

व्याख्या : प्रसाद जी का यह मानना है कि भारत देश पर अनेक संकट आए। बाहरी शक्तियों ने कई बार हमें पराजित करने का षड्यंत्र रचा किन्तु भारतीय वीरों ने हर बार उनका डटकर सामना किया। यहाँ समय-समय पर अनेक जातियों का प्रभाव देखने को मिलता है—कभी मौर्य वंश, चालुक्य वंश अथवा मुगल सभी ने यहाँ शासन किया और बाद में ये समाप्त भी हो गए। लेकिन भारतीय ऐसे वीर हैं जिनका

पालन-पोषण स्वयं प्रलय ने किया है। भले ही यहाँ अनेक प्राकृतिक विपदाएँ आई हों, पर हमने उनके पश्चात् फिर से जीवन का पुनर्निर्माण किया है। सभी भारतीय चरित्रवान हैं एवं उनकी भुजाओं में अपार बल है। अभिप्राय यह है कि हम तन और मन दोनों से शक्तिशाली होते हुए भी बहुत ही विनम्र हैं। हमने सदैव अपने से बड़ों का सम्मान और छोटों को प्रेम करना सीखा है। अतः जब भी कोई हमारे द्वार पर कुछ माँगने आता है तो हमारा हृदय दया और करुणा से भर जाता है तथा हम उसकी विपत्ति को दूर करने का हृदय से प्रयास करते हैं। भारतवासियों के हृदय में देश के गौरव के लिए अपार श्रद्धा एवं देश-प्रेम की भावना रही है।

विशेष : 1. भारतीय विपत्ति के समय भी अपना धैर्य नहीं खोते।

2. विपत्ति-ग्रस्त व्यक्ति की हर संभव सहायता भारतीयों का धर्म बताया गया है।

3. कवि की दृष्टि में भारतवासियों को अपनी संस्कृति पर गर्व होना चाहिए।

4. भाषा में सहजता एवं प्रवाहमयता का गुण विद्यमान है।

5. पंक्तियों में लयात्मकता एवं तुकान्तता का समावेश है।

7. हमारे संचय में था दान..... हमारा प्यार भारतवर्ष

शब्दार्थ : टेव = दृढ़ आदत। हर्ष = खुशी। कर = हाथ। विमल = निर्मल। अतिथि = मेहमान। निछावर = अर्पित करना।

प्रसंग : छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद की कविताओं का मुख्य विषय प्रकृति-सौंदर्य एवं देश-प्रेम रहा। 'हिमालय के आँगन में' कविता के अन्तर्गत कवि ने भारत-महिमा का गुणगान किया है। अतीत के गौरव और सदियों से चली आती परंपरा के प्रति श्रद्धा का भाव व्यक्त किया गया है। कवि का मानना है कि मनुष्य का जीवन सर्वप्रथम उसके देश के लिए है। अतः हमें अपने देश की रक्षा करने के लिए यदि अपने प्राण भी न्यौछावर करने पड़े तो सदैव तत्पर रहना चाहिए।

व्याख्या : प्रसाद जी का मानना है कि भारत देश कभी सोने की चिड़िया कहलाता था, यहाँ इतना अधिक धन संचित था कि हम दान करने में कभी पीछे नहीं हटे। हमारे लिए घर पर आया प्रत्येक मेहमान ईश्वर के समान माना जाता था। भारतमाता के पुत्र वचन को महत्ता देते थे, यदि मुख से कोई प्रतिज्ञा कर ले तो उसे प्राण देकर भी पूरी करते थे। भारत देश के गौरवशाली अतीत को कभी भुलाया नहीं जा सकता। वर्षों के बाद भी आज भारत भूमि की संतानों की रगों में वही शक्तिशाली खून बह रहा है। वही शांति, वही ज्ञान हमारे भीतर आज भी मौजूद है। हम वही आर्यों की दिव्य संतान हैं जिसमें शक्ति एवं साहस की कहीं भी कमी नहीं है। हमने अपने भीतर भारतीयता को आज भी जीवित रखा है। आज आवश्यकता है कि हम सभी भारतवासी अपने देश की अस्मिता एवं गौरव को बरकरार रखने के लिए सदैव तत्पर रहें। हमें इस बात पर गर्व है कि हम भारत की प्रगति के लिए निरंतर प्रयास करें। हमारा भारतवर्ष पवित्र एवं पावन भूमि है, जिस पर देवता भी अवतार लेना अपना सौभाग्य समझते हैं। अतः हमें अपने देश की गरिमा बनाए रखने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करना चाहिए। इसके लिए सभी भारतीय तन, मन और धन से अपने कर्तव्य का निर्वाह करने के लिए तत्पर हैं और आगे भी रहेंगे।

- विशेष : 1. 'अतिथि देवो भवः' की हमारी अवधारणा का वर्णन किया गया है।
2. कवि गौरवशाली अतीत की तुलना वर्तमान स्थिति से करते हैं।
3. भारतीयों में आज भी अतीत के समान शक्ति, ज्ञान एवं साहस मौजूद है।
4. भाषा में सहजता एवं प्रवाहमयता का गुण विद्यमान है।
5. पंक्तियों में लयात्मकता एवं तुकान्तता का सर्वत्र समावेश है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्रश्न (क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर अपने शब्दों में लिखिए—

1. जयशंकर प्रसाद की भाषा-शैली का विवेचन कीजिए।
2. जयशंकर प्रसाद की कविताएँ देश-भक्ति परक हैं, प्रकाश डालिए।
3. जयशंकर प्रसाद के प्रकृति-सौंदर्य का विवेचन कीजिए।
4. प्रसाद जी के काव्य-सौंदर्य पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न (ख) निम्नलिखित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए—

1. खग-कुल, कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा।
2. विमल वाणी ने वीणा ली, कमल कोमल कर में स्रपीत।
सप्तस्वर सप्तसिंधु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम-संगीत।।
3. बीती विभावरी जाग री, अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा-घठ उषा नागरी।।
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम।

प्रश्न (ग) निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बताइये—

संचय, पुरंदर, पवि, रत्नाकर, स्वर्ण-भूमि, उत्थान-पतन

1. 'जो बीत गई सो बात गई' : हरिवंशराय बच्चन

—डॉ. भवानी दास

मुक्त शिक्षा विद्यालय

कवि-परिचय

साहित्य-क्षेत्र में बच्चन का आविर्भाव छायावाद के उत्कर्षकाल में हुआ था। इस युग के कवि यथार्थ जगत से दूर, कल्पनाओं के घोड़े दौड़ाकर अपने ही बहुरंगी स्वप्नों की दुनिया में लीन थे। यद्यपि व्यक्तिगत अनुभूतियों का प्राधान्य इस काल के काव्य में भी था परन्तु उन पर प्रायः सर्वत्र एक रहस्य का आवरण पड़ा रहता था। ये कवि अपने राग-विराग की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति का साहस न जुटा सके। बच्चन के आगमन से साहित्य जगत् में एक मोड़ उपस्थित हुआ, उन्होंने छायावादी भाव-शैली को न अपनाकर अपनी अनुभूतियों को प्रत्यक्षतः व्यक्त किया। यद्यपि प्रारम्भिक काव्य में छायावाद का कुछ प्रभाव अवश्य लक्षित होता है परन्तु उन्होंने उससे अपने को मुक्त कर लिया और कविता-कामिनी को कल्पना के आकाश से उतारकर यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित किया।

डॉ. हरिवंशराय बच्चन का जन्म 27 नवम्बर, 1907 ई. को इलाहाबाद में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री प्रतापनारायण और माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। उनके पिता इलाहाबाद के अंग्रेजी दैनिक 'पायनियर' में काम करते थे। हरिवंश पुराण की कथा का श्रवण और जाप करने से इनका जन्म होने के कारण इनका नाम हरिवंशराय रखा गया। बच्चन घर में पुकारने का नाम था जो आगे चलकर वंशगोत्र के रूप में चल पड़ा।

बच्चन की प्रारम्भिक शिक्षा इलाहाबाद के म्युनिसिपल स्कूल में हुई। सन् 1925 में हाईस्कूल और सन् 1926 में इण्टरमीडिएट करके उन्होंने सन् 1929 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. किया। बी.ए. प्रथम वर्ष में ही इनका विवाह श्यामादेवी नामक एक सुन्दर युवती से कर दिया गया। 1930 में एम.ए. प्रथम वर्ष किया, परन्तु कुछ पारिवारिक चिन्ताओं और राजनीतिक हलचलों के कारण पढ़ाई छोड़ दी। इसी बीच राष्ट्रीय जुलूसों में गाने के लिए कुछ गीत भी लिखे जो बहुत लोकप्रिय हुए जैसे "सिर जाए तो जाए—पर हिन्द आज़ादी पाए"। परन्तु फिर पारिवारिक कठिनाइयों के कारण पहले 'चाँद' प्रेस और बाद में 'पायनियर' में जिला कचहरी के संवाददाता के रूप में नौकरी की। सन् 1933 में इसे छोड़कर बच्चन जी 'अभ्युदय' के सम्पादकीय विभाग में सम्मिलित हो गये। सन् 1934 में इसे भी छोड़कर इलाहाबाद के अग्रवाल विद्यालय में अध्यापन कार्य करने लगे। इसी बीच पत्नी की यक्ष्मा बीमारी भयंकर रूप लेती गई और 17 नवम्बर 1936 को उनका देहान्त हो गया। इस दुर्घटना से कवि को गहरा आघात पहुँचा। एक वर्ष तक कवि की वीणा मौन रही और फिर 22 नवम्बर 1937 को उनकी वाणी फूटी निशा निमन्त्रण के गीतों के रूप में—'आओ, सो जाँ मर जाँ'। कवि की मौज-मस्ती का स्वर परिवर्तित हो गया।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. करने के उपरान्त बच्चन बी.टी. के लिए बनारस ट्रेनिंग कॉलेज में प्रविष्ट हुए। इलाहाबाद आने पर उन्हें अस्थायी लेक्चरर की नौकरी मिल गई। 28 जनवरी 1942 को बच्चन जी का तेजीजी से विवाह हुआ। 11 अक्टूबर 1943 को पुत्र अमिताभ और 18 मई 1947 को अजिताभ का जन्म हुआ। तेजी के आगमन से विरह-वेदना का दौर समाप्त हुआ और वे आशा तथा विश्वास के गीत रचने लगे-

‘जो बीत गई सो बात गई’।

1957 में बच्चन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से ईट्स पर अपना शोध कार्य पूर्ण कर स्वदेश लौट आये। एक वर्ष तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। कुछ समय तक आकाशवाणी प्रयाग में काम किया। इसके बाद भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में विशेष अधिकारी बना दिये गये। 1966 में बच्चन जी को तत्कालीन राष्ट्रपति की ओर से राज्यसभा का सदस्य चुना गया। इसी वर्ष इनको ‘चौसठ रूसी कविताएँ’ पर सोवियत भूमि का नेहरू पुरस्कार मिला। 1969 में ‘दो चट्टानें’ पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला। सन् 1969 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा उन्हें साहित्य-वाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् 1970 में अफ्रो-एशियन-राइटर्स कांफ्रेंस के अवसर पर उन्हें ‘लोटस पुरस्कार’ मिला। सन् 1976 में उन्हें राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण से अलंकृत किया गया। सन् 1992 में उन्हें सरस्वती पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

रचनाएँ

बच्चन जी की लेखन-प्रतिभा बहुमुखी है। इन्होंने गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में सृजन कार्य किया। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं-

शोध प्रबन्ध-डब्ल्यू.बी. ईट्स एण्ड ऑकल्टिज़्म।

गद्य कृतियाँ-क्या भूलूँ क्या याद करूँ (खण्ड-1 आत्मचरित), नीड़ का निर्माण फिर (खण्ड-2), बसरे से दूर (खण्ड-3), दशद्वार से सोपान तक (खण्ड-4), प्रवास की डायरी, नये-पुराने झरोखे, टूटी-छूटी कड़ियाँ।

मौलिक काव्य कृतियाँ-तेरा हार, प्रारम्भिक रचनाएँ-भाग-1-2, मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशा-निमन्त्रण, एकान्त संगीत, आकुल अन्तर, सतरंगिनी, हलाहल, बंकाल का काल, सूत की माला, खादी के फूल, मिलन यामिनी, प्रणय पत्रिका, धार के इधर-उधर, आरती और अंगारे, बुद्ध और नाचघर, त्रिभंगिमा, चार खेमे चौसठ खूँटे, दो चट्टानें, बहुत दिन बीते, कटती प्रतिमाओं की आवाज़, उभरते प्रतिमानों के रूप और जाल समेटा।

अनूदित कृतियाँ-उमर खैय्याम की मधुशाला, जनगीता, चौसठ रूसी कविताएँ, मरकत द्वीप का स्वर, नागरगीता।

काव्यगत विशेषताएँ—बच्चन हिन्दी साहित्य के एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनकी काव्यधारा उनकी जीवनधारा के इतस्ततः प्रवाहित होती रही है। उनका जीवन और काव्य एक दूसरे के पूरक हैं। जीवन के बदलते रूप के साथ उनके काव्य का स्वरूप भी परिवर्तित होता गया है। जीवन की भोगी-झोली अनुभूतियाँ ही उनके काव्य का विषय रही हैं।

बच्चन जी का प्रथम काव्य-संग्रह 'तेरा हार' 1932 में प्रकाशित हुआ। विभिन्न पत्रिकाओं में 'तेरा हार' की प्रशंसात्मक आलोचना की गई जिससे प्रोत्साहित होकर वे आगे भी कविताएँ लिखते रहे। उनकी वे रचनाएँ 'प्रारम्भिक' रचनाएँ भाग-1, भाग-2 के नाम से बाद में प्रकाशित हुईं। इन रचनाओं पर अंशतः छायावाद का प्रभाव बना रहा है परन्तु वे छायावादियों के समान वायवी नहीं हो सके हैं क्योंकि जीवन के कटु यथार्थ से साक्षात्कार एवं संघर्ष उन्हें केवल कल्पनाशील नहीं बना सका है, धरती से उनका सम्पर्क बराबर बना रहा है। सामाजिक वैषम्य और राजनीतिक हलचलों से प्रभावित उद्गार भी—यहाँ व्यक्त हुए हैं। प्रेमानुभूति से सम्बद्ध कविताएँ भी यहाँ हैं। काव्य-कला की दृष्टि से ये बहुत ही साधारण कविताएँ हैं।

खैय्याम की रुबाइयों के अनुवाद से ही कवि को सन्तुष्टि न मिली तो उन्होंने अपनी 'मधुशाला' का प्रसाद निर्मित किया तत्पश्चात् मधुबाला और 'मधुकलश' की रचना की। बच्चन जी का मधुकाव्य सामाजिक दमन और मन की घुटन के प्रति स्वच्छन्द विद्रोह की पुकार है। उनकी वाणी क्रान्ति तथा विद्रोह की वाणी है। उनका यह विद्रोह सामाजिक क्षेत्र में ही नहीं वरन् परिवार तथा साहित्य के क्षेत्रों में भी हुआ। सम्पूर्ण मधुकाव्य दर्द को भुलाने का प्रयास है परन्तु उन्होंने अपने दर्द का गायन मस्ती के साथ किया—

“पर मैं वह रोगी हूँ जिसकी एक दवा है मधुशाला।”

बच्चन क्षणभंगुर जीवन में भोगवाद का स्वर मुखरित करते हैं। वे एक ऐसे संसार की कामना करते हैं जिसमें सभी समान हों। इस प्रकार बच्चन का सम्पूर्ण मधुकाव्य व्यक्ति के मनोनुकूल जीवन जीने की अदम्य आकांक्षा का काव्य है।

सन् 1936 में पत्नी श्यामा के देहावसान से कवि इतना मर्माहत हुआ कि वह नितान्त अकेला उदास और अपने में ही खोया रहने लगा। एक वर्ष के बाद विरह विषाद के लघु-लघु गीतों में कवि की वाणी मुखरित हुई। निशा-निमन्त्रण, एकान्त संगीत और आकुल अन्तर तक दुख का यह सागर अबाध रूप से प्रवाहित रहा। 'आकुल अन्तर' के गीतों में अपनी पीड़ा से उबरने का प्रयास भी दिखाई देता है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है—'निशा निमन्त्रण' और एकान्त संगीत का रचनाकाल बच्चन के लिए आत्म साक्षात्कार का समय है। इन कविताओं में भाग्यचक्र के नीचे कुचले हुए मानव के चीत्कार और ललकार दोनों के मिले-जुले स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं।' 'अग्निपथ', 'आगे हिम्मत करके आओ', 'प्रार्थना मत कर', 'कुछ भी आज नहीं मैं लूँगा' गीतों में दृढ़ आत्मविश्वास और दुःख से संघर्ष की स्थिति का चित्रण है।

तेजी जी से विवाह के बाद बच्चन का जीवन पुनः आशा उमंग से प्रफुल्लित हो उठा। 'संतरंगिनी' में कवि नाश के ऊपर निर्माण का स्वर मुखरित करता है 'नीड़ का निर्माण फिर-फिर'। 'मिलन यामिनी' तथा

‘प्रणय पत्रिका’ रचनाएँ बच्चन के राग संसार से सम्बद्ध हैं। इन गीतों में प्रणय भावना की संयत अभिव्यक्ति मिलती है।

‘बुद्ध और नाचघर’ कृति कवि के अपने जीवन से बाहर आकर युग्यथार्थ का साक्षात्कार करने का प्रयास है। यद्यपि इससे पूर्व बंगाल के भीषण अकाल और बापू की हत्या से सम्बद्ध रचनाएँ उन्होंने लिखी थीं परन्तु ये रचनाएँ भावना के तीव्र आवेग में लिखी गई थीं और इनकी रचना के बाद कवि पुनः स्वजीवन की ओर लौट गया था। ‘बुद्ध और नाचघर’, त्रिभंगिमा, चार खेमे चौंसठ खूँटे, दो चट्टानें, बहुत दिन बीते, कटती प्रतिमाओं की आवाज़, उभरते प्रतिमानों के रूप जाल समेटा आदि रचनाओं में युग यथार्थ का मुखरण और उन पर व्यंग्य है। राजनीति के केन्द्र दिल्ली में रहते हुए उन्होंने नेताओं के मुखौटे उतारे, सामाजिक जीवन में व्याप्त अजनबीपन की खाई को व्यक्त किया, सामाजिक बुराइयाँ भ्रष्टाचार, रिश्वत खोरी आदि का पर्दाफाश किया और साहित्यकारों की गुटबन्दी पर भी खुलकर व्यंग्य किया। कवि का आध्यात्मिकता के प्रति झुकाव भी इन रचनाओं में मिलता है—‘प्रभु मन्दिर यह देह री’। सृजन से मोहभंग भी कवि की एक समय की अनुभूति है परन्तु अब उस मोहभंग का मोह भी भंग हो चुका है, फलतः उसके बाद भी कुछ और कविताएँ उन्होंने लिखीं इस प्रकार बच्चन की कविता जीवन के सभी पक्षों को अपने में समेटे हुए है। प्रसिद्ध गीतकार नीरज जी ने कहा है—“व्यक्ति मन की ऐसी कौन-सी अनुभूति है जो बच्चन ने नहीं लिखी? पालने से पलंग तक, पनघट से मरघट तक, आँगन से चौराहे तक, एकान्त से भीड़ तक, जहाँ तक जितना कुछ जीवन है, वह सब बच्चन की कविता है।”

बच्चन जी ने अपनी अनुभूतियाँ सहज स्वाभाविक ढंग से कही हैं उन पर किसी प्रकार की कला का रंगो-रोगन नहीं चढ़ाया। उन्होंने छायावादी अलंकृत और व्यंजना प्रधान भाषा की अपेक्षा सहज सरल बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया। उनकी भाषा में न तो द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता है और न छायावादी दुरुहता और लाक्षणिकता। उनकी भाषा जन साधारण की भाषा के निकट है। पन्त ने कहा है कि उनकी भाषा साहित्यिक होते हुए भी बोलचाल के निकट है।

बच्चन भावों की अभिव्यक्ति के लिए शिल्प की सजगता को आवश्यक नहीं समझते। वे बाह्य अलंकरण, शब्द चमत्कार और दुरुह कल्पनाओं से मुक्त रहकर, हृदयानुभूतियों की निश्छत अभिव्यक्ति को महत्त्व देते हैं। उनकी भाषा, छन्द, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार, सूक्तियाँ, मुहावरे सभी भावों के आवेग में सहज, स्वाभाविक रूप से आये हैं। उनका कथन है : ‘कला के सम्बन्ध में मेरा मूलभूत सिद्धान्त तब भी था, आज भी है—मैंने अपनी अनुभूतियाँ स्वाभाविक ढंग से कही थी...त्वचा के ऊपर रंग-रोगन लगाने, क्रीम-पाउडर पोतने की न मुझमें क्षमता है और न वह मेरी रुचि के अनुकूल है, त्वचा में, मांस में दौड़ते स्वस्थ रक्त की जितनी आभा है, कविता में उतनी ही कला मुझे सख्त है।’ वस्तुतः बच्चन की कला उनके व्यक्ति की भाँति सरलता, सहजता और सुस्पष्टता में है।

वस्तुतः बच्चन के व्यक्तित्व और कृतित्व को पृथक करके देखा नहीं जा सकता। उनका जीवन काव्यमय और काव्य जीवनमय हो गया है। बच्चन ने स्वयं कहा है कि “शब्दों में कवि होने से पूर्व मैं

जीवन में कवि बन गया था।” अतः कविता उनके जीवन की विवशता थी। जीवन की मार्मिक अनुभूतियों से सम्बद्ध होने के कारण बच्चन की कविता सभी को आत्मसात् करने में सक्षम है।

प्रतिपाद्य

श्री हरिवंशराय बच्चन जी की कविता ‘सो बीत गई सो बात गई’ जीवन के कठोर सत्य पर आधारित है। इस संसार में सबसे बड़ा सत्य मृत्यु ही है, जो जन्म लेता है—उसकी मृत्यु निश्चित है। अजर अमर हमारे कर्म हैं। बच्चन जी की इस कविता का मूलभाव यही है कि सत्य को स्वीकारते हुए हमें निरन्तर अपने कर्म को करते रहना चाहिए और आगे बढ़ना चाहिए।

अगर इस कविता को आध्यात्मिक कविता कहा जाए तो गलत नहीं होगा, क्योंकि हिन्दू धर्म के अनुसार हम ब्रह्मा-विष्णु-महेश की अराधना करते हैं—जिसमें ब्रह्मा सृजनकर्ता हैं, विष्णु पालककर्ता और महेश विनाशकर्ता और यही सत्य है सांसारिक जीवन का।

इस कविता का जो दूसरा मुख्य बिंदु है वह है—‘मोह’, ‘लगाव’, ‘चाहत’। दुःख का मूल कारण मोह ही है। यह संसार नश्वर है, और इसके नष्ट होने पर निरन्तर शोक करना व्यर्थ है। प्रकृति भी हमें यही शिक्षा देती है जो बीत गया उसे जाने दो।

इस कविता का एक संदेश यह भी है कि जीवन में अपेक्षा मत रखो किसी से; आप प्रेम दो, सम्मान दो बदले में अगर वो आपको ना मिले तो निराश मत हो अर्थात् अपने कर्म पर केन्द्रित रहो फल की चिन्ता ना करो। गीता में भी कहा है—“**कर्मण्ये वाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन। मां कर्म फल हेतु भूः मांते सङ्गीस्त्वकर्मणि॥**” **Your right is to work only, But never to its fruits; Let not the fruits of action be thy motive, Nor let thy attachment be to inaction.**

दो ही सत्य हैं—इस संसार का जन्म और मृत्यु और यह दोनों ही हमारे नियंत्रण में नहीं हैं फिर चिन्ता क्यों और निराशा क्यों। जो परम सत्य है—वह है कर्म जिस पर हमारा पूरा नियंत्रण है। इसलिए हमें केवल और केवल अपने कर्मों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए जीवन पथ पर चलते रहना चाहिए; इस कविता का मुख्य संदेश यही है।

व्याख्या भाग

1. जो बीत गई सो बात गई
जीवन में एक सीतारा था

शब्दार्थ : आनन = चेहरा। शोक = दुःख। नित्य = हर समय। मदिरालय = शराबखाना। मृदु = कोमल, नरम। मादकता = नशा। कुसुम = फूल।

प्रसंग : हरिवंशराय बच्चन छायावाद के कवि हैं। ‘जो बीत गई सो बात गई।’ कविता हरिवंशराय बच्चन की बहुत ही प्रसिद्ध कविता है। और यह एक ऐसे सत्य पर आधारित है जिसको हम सब जानते हैं, देखते हैं किन्तु स्वीकार नहीं करते और निराशा में डूबे रहते हैं। बच्चन जी इस कविता के माध्यम से हमें

जीवन जीने की कला सीखाते हैं निराशा और शोक से बाहर निकलने के गुर (तरीके) बताते हैं। कविता के हर भाग में जिन्दगी के कड़वे सच का सामना कैसे किया जाये इसके लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार यह एक आध्यात्मिक कविता के साथ-साथ अभिप्रेरित करने वाली (motivational) कविता भी है।

व्याख्या : इस भाग में बच्चन जी यह कहना चाहते हैं कि हम सबके जीवन में जो हमारे प्रियजन होते हैं वो हमारे लिए बहुत ही अजीब होते हैं उनके बिना हम जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते, परन्तु मृत्यु अटल सत्य है उस पर हमारा वश नहीं है। इसलिए जो चला गया उसका शोक मनाना व्यर्थ है, वह वापस नहीं आयेगा इसलिए जीवन में आगे बढ़ना ही उचित है। वह निराशा और शोक से बाहर निकलने के लिए आकाश का उदाहरण देते हैं कि आकाश में कितने ही तारें टूटते हैं पर आकाश उन पर शोक नहीं मनाता। बल्कि जो तारें होते हैं उनके साथ ही प्रसन्न रहते हुए कर्मरत रहता है।

कविता के इस भाग में बच्चन जी वर्तमान में जीने की सीख देते हैं, क्योंकि भूत और भविष्य ये दोनों हमारे नियंत्रण में नहीं हैं, जो बीत जाता है उसे हम बदल नहीं सकते और जो होने वाला है उसे हम रोक नहीं सकते। अतः हमें सदैव वर्तमान में ही जीना चाहिए, जीवन के हर पल का आनन्द लेना चाहिए ना की शोक और निराशा में डूबकर समय नष्ट करना चाहिए।

हिन्दी में भूत और भविष्य दोनों को 'कल' कहा गया है। सोचिए तो लगेगा की ये दोनों वो यथार्थ हैं जीवन के, जिस पर हमारा वश नहीं है। शायद इसलिए ही भूत और भविष्य के लिए एक शब्द प्रयोग किया जाता है। जन्म-मृत्यु के सत्य पर हम सबका अस्तित्व निर्भर है, फिर इस सत्य से भागना क्यों, चिंता क्यों। कर्म ही सत्य है।

2. जीवन में वह था एक कुसुम
थे उस पर नित्य निछावर तुम।

प्रसंग : पूर्ववत्।

व्याख्या : इस भाग में बच्चन जी यह समझाना चाहते हैं कि जीवन में मृत्यु को स्वीकार करने के अलावा कोई रास्ता नहीं है चाहकर या अनचाहे इस सत्य को स्वीकारना ही बुद्धिमत्ता है। और जो सत्य बदला ना जा सके उस पर शोक मनाना या शोर मनाना व्यर्थ है। इस बात को बच्चन जी फूलों के बगीचों का उदाहरण देकर समझाते हैं कि जहाँ रोज नये फूल खिलते हैं पुराने सूख जाते हैं, नये पत्ते निकलते हैं और पुराने पत्ते झड़ जाते हैं वहाँ वह बगीचा क्या शोक मनाता है, नहीं वह बाग इस परिवर्तन के सत्य को स्वीकार करते हुए, फूलों के खिलने और मुरझाने के परिवर्तन का स्वागत करता है, ठीक वैसे ही हमें जीवन में हो रहे परिवर्तन का स्वागत करते हुए आगे बढ़ना चाहिए।

3. जीवन में मधु का प्याला था
तुमने तन मन दे डाला था।

प्रसंग : पूर्ववत्।

व्याख्या : इस भाग को हम एक जातक कथा से समझ सकते हैं—एक बार एक स्त्री गौतम बुद्ध के पास जाती है रोती और बिलखती हुई कहती है कि आप बहुत बड़े धर्मात्मा हैं, ईश्वर तक आपकी पहुँच है कृपया करके मेरे पुत्र को जीवित कर दें। एकमात्र यही मेरा पुत्र था मेरे जीवन का एकमात्र सहारा। मैं अपने पुत्र के बिना जी नहीं सकती और वह बिलखती जा रही थी। गौतम बुद्ध ने सोचा की एक माँ को कैसे कह दूँ कि मृत्यु अटूट है, सामना करो और स्वीकार करो।

फिर बुद्ध ने कहा कि ठीक है मैं तुम्हारे पुत्र को जीवित कर दूँगा, “तुम जाओ और उस घर से सरसों का दाना लेकर आओ जिस घर में कभी किसी की मृत्यु नहीं हुई हो; स्त्री कहती है बस...यह तो बहुत आसान है किन्तु उसे ऐसा कोई घर नहीं मिलता जहाँ मृत्यु नहीं हुई हो।

फिर बुद्ध उस माँ को कहते हैं कि संसार नश्वर है, तुम इस मृत्यु को स्वीकार करो और अपने जीवन में आगे बढ़ो।

इस भाग में बच्चन जी मंदिरालय का उदाहरण देते हैं कि शराबखाने में कितनी बार प्याले गिरते हैं, टूटते हैं, शराब छलकती है और मिट्टी में मिल जाती है फिर भी मंदिरालय बन्द नहीं होता वह अनवरत चलता रहता है। कवि कहते हैं कि जो समय छूट जाये, जो बीत जाये उसका मातम क्या मनाना यह जीवन एक बुलबुला है और इसका फूटना निश्चित है अतः शोक मनाने से बेहतर है परिवर्तन को स्वीकार करके अपने कर्म को करना।

4. मृदु मिट्टी के हैं बने हुए
मधु घट फूटा ही करते हैं।

प्रसंग : पूर्ववत्।

व्याख्या : कविता के इस चौथे अंश में बच्चन जी यह संदेश देते हैं कि फूल, कलियों की तरह मानव भी मिट्टी के ही बने हैं और उनका फूटना तय है। जन्म और मृत्यु का नियम शाश्वत है इसको बदला नहीं जा सकता, परिवर्तन इस संसार का नियम है। और यह संसार इन्हीं नियमों और परिवर्तनों से चलता है। अतः मृत्यु जैसे सच को स्वीकार कर लेना चाहिए मृत्यु पर कितना भी शोक मना लें मृत्यु को टाला नहीं जा सकता।

प्रकृति भी यही संदेश देती है कि निरन्तर चलना ही जीवन है, रुक जाना मृत्यु है और जो समय के साथ चलता है, समय भी उसका साथ देता है। वर्तमान ही सत्य है, भविष्य कल्पना है और भूत को हम बदल नहीं सकते इसलिए जीवन को जीने के लिए जीवन में स्वीकार करने की कला आना ही चाहिए। हर सुख का दुःख में परिवर्तन हर दुःख का विषाद में परिवर्तन और हर विषाद का शोक में या निराशा में परिवर्तन, यह क्रम चलता रहता है प्रत्येक मनुष्य इस नियम से बंधा हुआ है। बच्चन जी इसी निराशा के क्रम को तोड़ने के लिए प्रेरित करते हैं कि शोक और विलाप से कुछ नहीं होता केवल समय नष्ट होता है इसलिए मृत्यु के सत्य को स्वीकारते हुए जीवन में आगे बढ़ना चाहिए, कर्मरत रहना चाहिए।

- विशेष :
1. भाषा सहज, सरल और स्वाभाविक है।
 2. कविता का मुख्य भाव है किसी प्रियजन की मृत्यु और विछोह के बाद स्वयं को कैसे संभाला जाये।
 3. 'मृत्यु अटल सत्य है'—इसको स्वीकारना ही बुद्धिमत्ता है।
 4. समय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, समय नष्ट करने का अर्थ स्वयं को नष्ट करना है।
 5. जीवन और मृत्यु के बीच में एक कर्म ही है जो हमारी पहचान है, इसलिए सदैव कर्म करते रहना चाहिए।
 6. संसार नश्वर है और इसे सहजता से लेना चाहिए।
 7. हमें वर्तमान में जीने की आदत डालनी चाहिए।
 8. बच्चन जी यह भी संदेश देते हैं कि मृत्यु के आगे हमारा अहंकार बहुत छोटा है। मृत्यु से कोई नहीं जीत सकता।

2. 'उनको प्रणाम' : नागार्जुन

—डॉ. सीमा जैन

मुक्त शिक्षा विद्यालय

हिंदी काव्य-परंपरा में नागार्जुन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रगतिशील कविता के ये प्रमुख हस्ताक्षर हैं। आज़ादी के बाद हिंदी की प्रगतिशील धारा के तमाम रूपों को उन्होंने बारीकी से रूपयित किया। जनता की एकता, प्रजातन्त्र और धर्मनिरपेक्षता उनकी कविता के प्रमुख बिन्दु हैं। 'उनको प्रणाम' कविता कर्मशीलता को महत्त्व देती है। नागार्जुन ने उन लोगों के प्रति आदर और सम्मान प्रकट किया है जिन्होंने अपना कर्म पूरी निष्ठा और ईमानदारी से किया, किन्तु फिर भी सफल नहीं हो पाए। ऐसे लोग असफल होने के बाद भी साहस और कर्तव्य पालन में पीछे नहीं हटे। संक्षेप में यह कविता जीवन में संघर्ष, सदाचरण, उत्साह, सत्कर्म और श्रम को महत्त्व देती है।

जीवन-परिचय

नागार्जुन का जन्म सन् 1911 में बिहार के दरभंगा जिले के तरौनी ग्राम में हुआ था। उनका वास्तविक नाम पं. बैद्यनाथ मिश्र था। उनका परिवार सनातन धर्मी और रूढ़िवादी था। चार वर्ष की अल्पायु में ही उनकी माता का देहावसान हो गया था। पिता पुरोहित थे और चाहते थे कि बेटा भी यही काम करे। इसलिए उन्हें संस्कृत के श्लोक जबरदस्ती रटवाये गये। परन्तु बचपन से ही वे विद्रोही प्रकृति के व्यक्ति थे। इस कार्य में अरुचि होने के कारण उसकी ओर वे प्रवृत्त नहीं हुए। सन् 1930 के लगभग वाराणसी जाकर उन्होंने संस्कृत, पालि, प्राकृत का विशेष अध्ययन किया। यहाँ रहते हुए अपने युग की हलचलों, कुरीतियों से उनका परिचय हुआ। फिर आर्य-समाज के सम्पर्क में आये। उसके बाद बौद्ध धर्म की ओर उनका झुकाव हुआ। लंका जाकर उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और बैद्यनाथ मिश्र नागार्जुन हो गये। बाद में स्वामी सहजानन्द सरस्वती के सम्पर्क में आकर वे किसान आंदोलन से जुड़े। वामपंथी विचारधारा से प्रभावित होकर उनकी जीवन-दृष्टि पूर्णतः तार्किक, प्रगतिशील हो गई। उनकी सभी रचनाओं में उनकी इस जीवन-शैली के दर्शन होते हैं। "गरीबी, कुसंस्कार और रूढ़िग्रस्त पंडिताऊ परिवेश नागार्जुन को लील नहीं पाये, नहीं तो वे वहीं चुटन्ना और जनेऊ वाले पंडित होते। और न पुरानी परिधि से बाहर निकलते, न आँखें खुलती, न इस तरह युग का साथ दे पाते।" (अन्नहीनम् क्रियाहीनम्)

नागार्जुन ने कविता, कहानियाँ, उपन्यास और निबन्ध लिखे। उनकी कुछ प्रमुख प्रकाशित रचनाओं के नाम हैं—

- | | |
|--------------|--|
| निबन्ध | - 'अन्नहीनम्', 'क्रियाहीनम्।' |
| कविता-संग्रह | - 'युगधारा', 'सतरंगे पंखों वाली', 'प्यासी पथरायी आँखें', 'तालाब की मछलियाँ', 'चन्दना', 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने', 'तुमने कहा था', 'सुनी जूतियों का कोरस', 'हज़ार-हज़ार बाँहों वाली।' |
| खंडकाव्य | - 'भस्मांकुर।' |

मैथिली कविता-संग्रह	-	‘चित्रा’, ‘पत्रहीन नग्न गाछ।’
कहानी-संग्रह	-	‘आसमान में चंदा तैरे।’
उपन्यास	-	‘रविनाथ की चाची’, ‘बाबा बटेसरनाथ’, ‘दुःखमोचन’, ‘बलचनमा’, ‘वरुण के बेटे’, ‘नयी पौध’, ‘कुंभीपाक’, ‘अभिनन्दन’, ‘उग्रतारा’, ‘इमिरितिया’ आदि।

साहित्यगत विशेषताएँ-

नागार्जुन की कविताओं का फलक साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष से लेकर स्वतन्त्र भारत के सपने तक फैला हुआ है। इससे एक ओर भारत की मुक्ति की कामना का स्वर व्यक्त हुआ तो दूसरी ओर द्वितीय विश्वयुद्ध और जनता के साथ उभर रहे अन्तर्विरोध की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी कविता ने साम्राज्यवाद के हिंसक चेहरे को उकेरा है तो समाजवाद के सपने की जीत भी दिखाई है। इतिहास को बनाने वाले चरित्रनायक है तो इतिहास को नष्ट करने वाली खलनायक भी हैं। किसान और मजदूरों के जीवन के वैविध्यपूर्ण और सादगी भरे चित्र हैं तो मध्यवर्ग के जीवन में व्याप्त असंगतियों और जनविरोधी मूल्यों का चित्रण भी है। नागार्जुन ने बुर्जुआ नेताओं पर लिखा तो साथ ही साथ समाजवादी नेताओं पर भी लिखा। कहने का तात्पर्य यह है कि नागार्जुन ने समाज के वैविध्यपूर्ण जीवन, प्रकृति के सौन्दर्य, समाज के बदलते स्वरूप, साम्प्रदायिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकता, मानवाधिकारों की रक्षा और विकास की चुनौतियों का ईमानदारी से चित्रण किया है।

नागार्जुन की कविता की बुनियादी चिन्ता जनतन्त्र है। जनतन्त्र के विकास में कौन-सी ताकतें बाधक हैं और कौन-सी ताकतें साधक हैं उस पर भी प्रकाश डाला है। उनका मत है कि जनतन्त्र के विकास के लिए मानवाधिकारों की रक्षा आवश्यक है। उन्होंने जनतन्त्र की बारीकियों और अन्तर्विरोधों का जैसा चित्रण किया है वैसा किसी अन्य कवि ने नहीं किया। आज़ादी के बाद शासक वर्ग द्वारा किस तरह जनविरोधी नीतियों का अनुसरण किया गया और उनसे जनतन्त्र किस तरह खोखला हुआ, इस सबका चित्रण नागार्जुन ने किया है।

बाबा नागार्जुन की कविता में सादगी, सम्प्रेषणीयता और सहजता को आसानी से महसूस किया जा सकता है। बाबा के लिए कविता जिन्दगी का सहज बयान है। आज़ादी के बाद के दौर की कविता को सम्प्रेषण की जिस समस्या से दो-चार होना पड़ा था, वह संकट नागार्जुन के यहाँ नहीं दिखाई पड़ता। बाबा ने जनतन्त्र में दर्शक की भूमिका को अस्वीकार किया है। दर्शक की भूमिका जनतन्त्र को कमज़ोर बनाती है। बाबा के लिए जनतन्त्र तभी मजबूत होगा, जब उसमें शिरकत की जाय, हस्तक्षेप किया जाये, जनतन्त्र के रखवालों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ा जाये। कहने का तात्पर्य यह है कि बाबा लेखक के साथ-साथ जनतन्त्र के सक्रिय कार्यकर्ता भी हैं।

नागार्जुन के काव्य-संसार को मोटे तौर पर निम्न कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

- | | |
|---------------------------------|--------------------------------------|
| 1. राजनीतिक कविताएँ | 2. प्राकृतिक कविताएँ |
| 3. सौन्दर्य परक कविताएँ | 4. सामाजिक जीवन पर केन्द्रित कविताएँ |
| 5. व्यक्ति और चरित्रपरक कविताएँ | 6. संस्कृत कविताएँ |

नागार्जुन ने अपने युग की समस्त राजनीतिक प्रवृत्तियों पर लिखा है। पहली कोटि की कविताओं में वे हैं जो साम्राज्यवाद विरोध एवं युद्ध विरोध के विषयों पर लिखी गई। दूसरी कोटि की कविताएँ जो राजनीतिक दलों और उनकी नीतियों पर लिखी गई। तीसरी कोटि की कविताएँ, जो राजनीतिक घटना विशेष पर लिखी गई। चौथी कोटि में वे कविताएँ आती हैं जो राजनीतिक व्यक्तियों पर लिखी गई हैं। इस कोटि की अधिकांश कविताएँ नारेबाजी-फार्मूलेबाजी और तुकबन्दी से मुक्त हैं। ये कविताएँ उस धारणा का खंडन करती हैं कि राजनीतिक कविता नारेबाजी-फार्मूलेबाजी और तुकबन्दी से मुक्त हैं। ये कविताएँ उस धारणा का खंडन करती हैं कि राजनीतिक कविता नारेबाजी होती है। इन कविताओं में व्यंग्य शैली का भूरपूर इस्तेमाल किया गया है। नामवर सिंह ने कहा है कि 'नागार्जुन के ये व्यंग्य भारतीय जनता की प्रखर राजनीतिक चेतना के साथ ही, उसके सहजबोध और जिन्दादिली के भी अचूक प्रमाण हैं।' शिवकुमार मिश्र और नामवर सिंह उन्हें कबीर के बाद सबसे बड़ा व्यंग्य कवि मानते हैं। रामविलास शर्मा ने लिखा कि 'नागार्जुन की सबसे सफल कविताएँ वहीं हैं जिनमें व्यंग्य से हँसते हैं, क्रोध या आवेश में नहीं आते।'

नागार्जुन ने दो तरह की राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं- एक सरकार और शोषणतन्त्र के तमाम भागीदारों के खिलाफ और दूसरी मेहनतकश जनता के संघर्षों के पक्ष में। आज़ादी को लेकर अनेक लेखकों में तरह-तरह के भ्रम थे और वे जनता की मुक्ति का दिवा-स्वप्न देख रहे थे। किन्तु बाबा को आज़ादी के वर्गीय चरित्र को लेकर कोई भ्रम नहीं था। उन्होंने साफ-साफ लिखा- "झूठ-झूठ, सुजला-सुफला के गीत न हम अब गायेंगे। भारत दाल तरकारी जब तक नहीं पेट भर पाएंगे। सड़ी लाश है जमींदारियाँ, इनको हम दफनाएंगे।" आज़ादी पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा- "कागज़ की आज़ादी मिलती, ले लो दो-दो आने में।" आज़ादी के बाद सत्ता तो बदली, परन्तु सत्ता के चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं आया। जब सारा देश आज़ादी की रजत जयन्ती मना रहा था तब बाबा ने इसके पाखंड का उद्घाटन करते हुए लिखा कि "नीचे निपट गरीबी, ऊपर ठाठ-बाट की रजत जयन्ती। शर्म न आती, मना रहे वे महँगाई की रजत जयन्ती।"

शिव कुमार मिश्र ने नागार्जुन की कविता के बारे में लिखा कि "नागार्जुन की कविता जीवन के विष और अमृत दोनों में ही आकंठ सराबोर कवि की कविता है। जीवन के विष को उसके भारतेन्दु और निराला की भाँति निर्विकार पिया और पचाया है और अमृत उसने दोनों हाथों मनुष्यकता के हित के लिए कविता के रूप में उलीचा है।" नागार्जुन के व्यक्तिगत जीवन के कटु यथार्थ की छाया भी उनके कृतित्व पर नहीं है। रचनाकार के रूप में मनुष्य और जीवन के प्रति उन्होंने गहरी आस्था का परिचय दिया है।

नागार्जुन के साहित्य का विषय मुख्यतः ग्राम-समाज है। मिथिलांचल से उनका घनिष्ठ परिचय है। उसके अंचल के विविध रूप उनकी रचनाओं में चित्रित हुए हैं। वहाँ का सुरम्य वातावरण, वहाँ की वेशभूषा, बोली-बानी, पेड़-पौधे, वहाँ के लोग की मानसिकता और संस्कार और सबसे अधिक महत्वपूर्ण उस प्रदेश की दुर्बलताएँ-अशिक्षा, दरिद्रता, जाति-वर्ग, वर्ण-भेद यह सब कुछ उनकी रचनाओं का आधार है। गाँव और छोटे कस्बों के जीवन पर लिखी कविताएँ सबसे ज्यादा हैं किन्तु उनका दृष्टिकोण कस्बाई नहीं है। इन चरित्रों का दृष्टिकोण आधुनिक है।

नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताओं को देखें तो पाएंगे कि वहाँ प्रकृति का जीवन्त रूप साकार हो उठा है। "मेरी भी आभा है इसमें" शीर्षक कविता का उदाहरण देखें- "भीनी-भीनी खुशबू वाले।

रंग-बिरंगे। यह जो इतने फूल खिले हैं। कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था। कल इनको मेरे सपनों ने बहलाया था।” नागार्जुन की प्रकृतिपरक रचनाओं का विश्लेषण करते हुए नामवरसिंह ने लिखा है— “वैसे, गाँव और विशेषतः अपने गाँव की प्रकृति के लिए नागार्जुन की आरम्भिक कविताओं में एक प्रकार का नास्टेलिजिया का भाव भी मिलता है, किन्तु ज्यादातर कविताओं में वे प्रकृति के यथार्थ के बीच सहज हो जाते हैं।” प्रकृति पर कविताएँ लिखते समय उन्हें गाँव, खेत, खलिहान, वर्षा, बादल, ऋतुएँ याद आती हैं।

नागार्जुन ने सौन्दर्यपरक कविताएँ लिखते समय अभिजन के सौन्दर्यबोध के बजाय साधारण जन, विशेषतः किसान के सौन्दर्यबोध की अभिव्यक्ति की है। यह सौन्दर्यबोध भावुकता, आवेग, सहजता और यथार्थ के उपकरणों से बना है। इसका दायरा व्यापक है। इसमें गाँव हैं, शहर हैं, प्रकृति हैं, महानगर हैं, कस्बे हैं, नदी हैं, खेत हैं यानि जीवन का सारा वैविध्य है।

नामवर सिंह का मानना है कि “जन कविता के रूप में नागार्जुन की सबसे बड़ी उपलब्धि है, कविता के कलात्मक सौन्दर्य की बलि चढ़ाये बिना कविता को सर्वजन सुलभ बना देना।” राम विलास शर्मा का मानना है कि “नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौन्दर्य के संतुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है उतनी सफलता से बहुत कम कवि हिन्दी में भिन्न भाषाओं में भी हल कर पाए हैं।”

नागार्जुन के काफी संख्या में संस्कृत कविताएँ भी लिखी हैं। वे संस्कृत में दूसरी धारा के कवि हैं। संस्कृत में जन-समाज-केन्द्रित कविताएँ लिखने की परम्परा रही है। नागार्जुन इसी परम्परा को अपने यहाँ विस्तार देते हैं।

नागार्जुन की कविताओं का मुख्य विषय जन-सामान्य ही होता है। अतः उनकी भाषा भी आम आदमी की सामान्य बोलचाल की भाषा है जो सहजता और आत्मीयता के गुणों से युक्त है। मैथिली का पुट उसकी सम्प्रेषणीयता में वृद्धि करती है। यही नहीं अग्रेजी, बंगला, और अवधी शब्दों का भी निःसंकोच भाव से प्रयोग मिलता है। किसी भी भाषा के शब्दों के ग्रहण एवं प्रयोग करने में उनका विश्वास है। उनकी कविता में सीधे-सीधे बातचीत की शैली भी मिलती है। विजय बहादुर सिंह के शब्दों में - “सामान्य तौर पर वे शब्दों और वाक्यों की सादगी किन्तु अर्थ की गम्भीरता और मार्मिकता के कवि हैं।”

नागार्जुन की कविता में छन्दों का वैविध्य मिलता है। मुक्त-छन्द के अलावा वैदिक ऋचाओं और अनुप्रासों के प्रयोग भी उनके यहाँ मिलते हैं। इसके अलावा दोहा, कुण्डलियाँ, रोला, हरिगीतिका, मन्दाक्रान्ता, कवित्त, सवैया और बरवै छन्द के सुन्दर प्रयोग उनके यहाँ मिलते हैं। नागार्जुन के छन्द इस्तेमाल के पीछे एक तर्क प्रणाली है कि जब कविता समाज से संबंध कह रहा हो, जब कविता में अलगाव और परम्पराहीनता का कोहराम मचा हो तो ऐसे में कविता के मर्म और लय की रक्षा करना, उसे जन संघर्षों से जोड़ना, जनता की चेतना के साथ छन्द की पुरानी परम्परा के सम्बन्ध को कलात्मक ढंग से बनाये रखना और कविता को आनन्द के बजाय सामाजिक सरोकारों से जोड़ना मुख्य लक्ष्य हो गया।

नागार्जुन की कविता की सबसे मोहक बात है लयात्मकता। लयात्मक संरचना के निर्माण के लिए वे जीवन के अछूते प्रसंगों को सामने लाते हैं साथ ही इसके निर्माण के लिए जिन उपकरणों का इस्तेमाल करते

हैं वे काफी रोचक और महत्त्वपूर्ण होते हैं। वे कविता में फूहड़ और सस्ती तुकबंदियों का प्रयोग नहीं करते बल्कि अर्थ की समन्वित पतों के उद्घाटन पर उनका ध्यान केन्द्रित रहता है।

नागार्जुन उपेक्षित, शोषित, दलित जनता के पक्षधर रहे हैं। आम आदमी के सुख-दुःख और सरोकारों को उन्हीं की भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान करना-नागार्जुन जैसे व्यक्तित्व के लिए ही सम्भव था। यही कारण है कि उन्हें 'जन-कवि', 'जनता के सुख-दुःख' का कवि कहा जाता है।

प्रतिपाद्य : 'उनको प्रणाम'

हिंदी साहित्य की प्रगतिशील धारा के सुप्रसिद्ध कवि नागार्जुन द्वारा लिखित कविता 'उनको प्रणाम' मानव जीवन में कर्म सौंदर्य को महत्त्व देती है। कवि ने इस कविता में उन महान विभूतियों के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव प्रकट किया है जो अपने कर्तव्य-पथ पर निरंतर अडिग रहे किन्तु कभी भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाए। देश-प्रेम के प्रति गौरव और समर्पण की भावना भी हमें इस कविता में दिखाई देती है। मार्मिक शब्दावली में प्रस्तुत इस कविता में कवि ने उन शूरवीरों को प्रणाम किया है जिनके अभिमंत्रित बाण लक्ष्य तक पहुँचने से पहले ही अवरुद्ध हो गए। कवि लिखते हैं कि मैं उन लोगों को प्रणाम करता हूँ जो छोटी सी नाव लेकर विशाल व निराकार समुद्र में उतरे किन्तु हमेशा के लिए उसी में समा गए। कवि उनको भी प्रणाम करता है जो उच्च पर्वत-शिखर की ओर उत्साह से आगे बढ़े किन्तु कभी लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाए। शिखर पर पहुँचने की कामना उनके मन में रह गई। मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियों ने उन्हें हिम-समाधि लेने पर मजबूर कर दिया या फिर वे नीचे ही उतर गए। कवि उनको भी प्रणाम करता है जो अकेले और धनहीन हैं वे संपूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करने निकले थे पर अब वे कहीं नहीं दिखाई दे रहे हैं। उनके पदचिह्न तक ओझल हो चुके हैं। कवि ने उनको भी प्रणाम किया है जो अपने कार्यों से कृत-कृत नहीं हो पाए और फाँसी के फंदे पर झूल गए। उन्हें देश के लिए शहीद हुए कुछ दिन भी नहीं बीते थे कि दुनिया ने उन्हें भुला दिया।

कवि ने उन लोगों को भी प्रणाम किया है जिन्होंने कठिन साधना की किन्तु उनके जीवन का अंत दुःखपूर्ण ही रहा। या फिर सिंह-लग्न में जन्म लेने के बाद भी अल्पायु में ही उनका अंत हो गया। जो दृढ़ व्रत और अदम्य साहस की जो प्रतिमूर्ति कहे जाते थे उनको बिना अवधि के दंडित जीवन ने समाप्त कर दिया अर्थात् उनका सारा जीवन-काल जेल में ही व्यतीत हो गया। कवि उनको भी प्रणाम करता है जिनकी सेवाएँ, कर्म अतुलनीय रहे परन्तु वे सदैव विज्ञापनों से, प्रचार-प्रसार से सदैव दूर रहे। विपरीत परिस्थितियों ने उनके मनोरथों को चूर-चूर कर दिया। अभिप्राय यह है कि वे देश को स्वाधीन होते देखना चाहते थे किन्तु यह मनोकामना कभी पूर्ण नहीं हो पाई और प्रतिकूल परिस्थितियों ने उनकी इच्छाओं को पूर्ण नहीं होने दिया।

राष्ट्रीयता को समर्पित यह कविता मार्मिक और संवेदनशील पक्ष से अत्यंत प्रभावमयी है। इस कविता की भाषा सरल और सहज है। तत्सम शब्दावली की अधिकता होते हुए भी कवि अपने कथ्य को व्यक्त करने में पूर्णतः सफल रहा है। अलंकृत शब्दावली की छटा भी हमें यत्र-तत्र दिखाई देती है। बिम्ब-योजना जन संवेदना से युक्त है और शैली की दृष्टि से चित्रात्मकता देखते ही बनती है। इस कविता में काव्य-सौंदर्य अत्यंत समृद्धशाली है।

व्याख्या भाग

1. जो नहीं.....उनको प्रणाम।

व्याख्या : नागार्जुन लिखते हैं कि मैं उन सभी व्यक्तियों को प्रणाम करता हूँ जो निरंतर कर्म करने के बाद भी अपने कार्यों में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सके। मैं उन सभी शूरवीरों को प्रणाम करता हूँ जिनके मंत्रों से अभिमंत्रित कुछ बाण अवरुद्ध हो गए तो कुछ अपने लक्ष्य पर पहुँचने से पूर्व ही भटक गए और जो वीर युद्ध की समाप्ति से पूर्व ही तरकस के बाणों से रहित हो गए। मैं उन लोगों को प्रणाम करता हूँ जो अपनी छोटी सी नाव लेकर समुद्र पार करने को उतरे थे किन्तु यह इच्छा उनके मन में ही रह गई और वे स्वयं उस निराकार समुद्र में समा गए। मैं उनको प्रणाम करता हूँ जो शिखर की ओर नव उत्साह के साथ आगे बढ़ रहे थे किन्तु ऐसे कुछ लोगों की यात्रा अधूरी ही रह गई। कुछ ने बर्फीली चोटी पर हिम-समाधि ले ली अर्थात् मौसम की मार से आगे नहीं बढ़ सके तो कुछ असफल होकर नीचे ही उतर गए।

विशेष : 1. कवि ने इन पंक्तियों में निरंतर कर्मशील होने का संदेश दिया है।

2. भाषा में सरलता, सहजता और बोधगम्यता है।

3. अभिमंत्रित, तूणीर, उदधि, हिम आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग है।

4. चित्रात्मक शैली अपनाई गई है।

5. बिम्ब-योजना मानवीय संवेनदाओं से पूर्ण है।

2. एकाकी.....उनको प्रणाम।

शब्दार्थ : एकाकी = अकेला। अकिंचन = दरिद्र। प्रतिपद = प्रत्येक। प्रत्युत = बल्कि।

प्रसंग : पूर्ववत्

व्याख्या : नागार्जुन आगे लिखते हैं कि मैं उन सभी लोगों को प्रणाम करता हूँ जो अकेले और धनहीन होते हुए भी पृथ्वी की परिक्रमा के लिए निकले किन्तु अंततः उनके पदचिह्न ओझल हो गए अर्थात् पैरों के निशान भी कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। मैं उन लोगों को भी प्रणाम करता हूँ जो देश के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य करने के बावजूद भी धन्य नहीं हो पाए और फाँसी के फन्दे पर झूल गए। अभी उनके बलिदान को ज्यादा समय भी नहीं हुआ था और लोगों ने उनके किए गए कार्य को भुला भी दिया।

विशेष : 1. इस कवितांश में कवि ने उन महान लोगों को प्रणाम किया है जिन्होंने देश के लिए अपनी जान की भी परवाह नहीं की और प्राणों का बलिदान कर दिया।

2. अकिंचन, अदृष्ट, प्रत्युत, कृत आदि तत्सम शब्दावली का प्रयोग है।

3. भाषा सरल एवं सहज है।

4. कृत-कृत में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार, पंगु प्रति-पद में अनुप्रास अलंकार है।

3. उग्र साधना.....प्रणाम!

शब्दार्थ : उग्र = तेज। दुखांत = दुःखपूर्ण अंत होना। सिंह = शेर/राशि विशेष। व्रत = संकल्प। धुन = लगन, किसी कार्य में बराबर लगे रहने की प्रवृत्ति। मनोरथ = मन की कामना। अतुलनीय = जिसकी तुलना न की जा सके।

प्रसंग : पूर्ववत्

व्याख्या : नागार्जुन कहते हैं कि मैं उनको प्रणाम करता हूँ जिन्होंने जीवन भर कठिन साधना की किन्तु जिनके जीवन का अंत दुख से भरा हुआ ही रहा। जिन लोगों के जन्म-काल में सिंह लग्न था वे भी असमय ही काल-कवलित हो गए। कवि नागार्जुन उन स्वतन्त्रता सेनानियों को प्रणाम करते हुए कहते हैं कि जो साक्षात् साहस और वीरता की प्रतिमा थे, जिन्होंने अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने के लिए कठोर से कठोर कर्तव्य का पालन किया। उन्होंने देश को स्वाधीन कराने के लिए जेल में ही पूरा जीवन व्यतीत कर दिया। कवि ऐसे सभी देशसेवियों को प्रणाम करता है जिन्होंने देश को अपनी अतुलनीय सेवाएँ दी किन्तु कभी भी इसका प्रचार-प्रसार नहीं किया। उनके निःस्वार्थ मनोरथ को विपरीत परिस्थितियों ने कभी भी लक्ष्य पर नहीं पहुँचने दिया।

विशेष : 1. स्वतंत्रता सेनानियों के उत्कट बलिदान की महिमा का वर्णन किया है।

2. राष्ट्र के प्रति निःस्वार्थ सेवा-भावना को प्रस्तुत करना कवि का उद्देश्य है।

3. 'जन्मकाल में सिंह लग्न' से कवि के ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान का परिचय मिलता है।

4. 'धुन का' एवम् 'चूर-चूर' मुहावरे का सशक्त प्रयोग है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर अपने शब्दों में दीजिए—

1. नागार्जुन के व्यक्तित्व एवम् साहित्यिक योगदान का विवेचन कीजिए।
2. 'उनको प्रणाम' कविता के भाव-सौंदर्य पर प्रकाश डालिए।
3. भाषा के आधार पर 'उनको प्रणाम' कविता का मूल्यांकन कीजिए।
4. 'उनको प्रणाम' कविता में कवि के मूल-भाव का विवेचन कीजिए।
5. 'किस प्रकार के लोग अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो पाए।' कविता के आधार पर सोदाहरण उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित का आशय स्पष्ट कीजिए—

1. जो छोटी-सी नैया लेकर
उतरे करने को उदधि-पार;
मन की मन में ही रही, स्वयं
हो गए उसी में निराकार!

2. एकाकी और अकिंचन हो
जो भू-परिक्रमा को निकले;
हो गए पंगु, प्रति-पद जिनके
इतने अदृष्ट के दाव चले!

(ग) प्रसंग-सहित व्याख्या कीजिए—

- i. कुछ कुंठित तूणीर हुए।
- ii. जो उच्च निराकार।
- iii. दृढ़ व्रत दिया अंत।
- iv. जिनकी सेवाएँ चूर-चूर!

(घ) विलोम शब्द बताइए—

पूर्ण, उच्च, सफल, तुलनीय, आकार, नव, दुखांत, अनुकूल।

(ङ) उपसर्ग बताइए—

अभिमंत्रित, निराकार, विज्ञापन, अदृष्ट, कुसमय, निरवधि।

3. 'गीतफरोश' : भवानीप्रसाद मिश्र

—डॉ. भवानी दास

मुक्त शिक्षा विद्यालय

कवि-परिचय

भवानी प्रसाद मिश्र आधुनिक कविता के अत्यन्त समर्थ कवि हैं। उनके गीतों ने आधुनिक हिन्दी कविता को नई भंगिमा और नई दिशा प्रदान की। इसलिए आधुनिक हिन्दी कविता में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया है।

मिश्र जी का जन्म सन् 1914 में होशंगाबाद जिले (मध्य प्रदेश) के टिगरिया नामक गाँव में हुआ। उनके पिता पं. सीताराम मिश्र साहित्यिक रुचि के व्यक्ति थे। हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार था। मिश्र जी को अपने पिता से साहित्यिक अभिरुचि और माँ गोमती देवी से संवेदनशील दृष्टि मिली। उन्होंने बी.ए. तक शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद उन्होंने अपने ज्ञानवर्द्धन के लिए स्कूली शिक्षा की अपेक्षा जिन्दगी के क्षेत्र में व्यावहारिक शिक्षा लेना उचित समझा।

आजीविका के लिए आरम्भ में उन्होंने एक स्वयं पाठशाला खोली। उन्हें स्वतन्त्रता-संग्राम के दौरान कारावास भी हुआ। इसके बाद सन् 1946 से सन् 1950 तक वे महिलाश्रम, वर्धा में शिक्षक रहे। तत्पश्चात् सन् 1952 से सन् 1955 तक हैदराबाद में 'कल्पना' मासिक का संपादन किया। सन् 1956 से सन् 1958 तक आकाशवाणी बंबई व दिल्ली में हिन्दी कार्यक्रमों का संचालन भी किया। सन् 1958 से 1972 तक उन्होंने 'सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय' का संपादन किया। इसके बाद से वे गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, गाँधी स्मारक निधि और सर्व सेवा संघ से जुड़े रहे हैं।

मिश्र जी का बचपन मध्य प्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य से युक्त अंचलों में बीता। अतः प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षण और प्रेम के संस्कार उनमें बहुत गहरे हैं। उनकी कविताओं में सतपुड़ा-अंचल, मालवा-मध्य प्रदेश के प्राकृतिक वैभव का चित्रण मिलता है। इन कविताओं को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मिश्र जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर उनके आसपास के भौगोलिक और प्राकृतिक परिवेश बहुत प्रभाव पड़ा है। अपने भौगोलिक परिवेश की साधारणता के बारे में उन्होंने 'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में लिखा है—

“छोटी-सी जगह में रहता था, छोटी-सी नदी नर्मदा के किनारे छोटे-से पहाड़ विन्ध्याचल के आंचल में छोटे-छोटे साधारण लोगों के बीच। एकदम घटना विहीन, अविचित्र मेरे जीवन की कथा है। साधारण मध्य वित्त के परिवार में पैदा हुआ, साधारण पढ़ा-लिखा और काम जो किए वे भी असाधारण से अछूते। मेरे आस-पास के तमाम लोगों की सुविधाएँ-असुविधाएँ मेरी थीं।”

इस साधारण परिवेश का एक विशेष संस्कार उनके मन पर पड़ा। ग्रामीण जीवन के साधारण क्रिया-कलापों ने भी उन्हें प्रभावित किया। ये सब प्रभाव उनकी कविताओं में देखे जा सकते हैं।

भवानीप्रसाद मिश्र ने अपनी काव्य-दृष्टि स्वयं निर्मित की है। हालाँकि वे बहुत से नए-पुराने कवियों से प्रभावित हुए। लेकिन उन्होंने किसी कवि को एक मात्र आदर्श मानकर उसका अंध अनुसरण नहीं किया। उन्होंने 'दांग, मीर, जौक, मीर अनीस, सौदा गालिब की चुनी हुई रचनाओं को पढ़ा था। इसके कारण कविताओं में उर्दू की बोलचाल-पूर्ण शैली आ गई। हिन्दी में कबीर और तुलसीदास ने उन्हें प्रभावित किया। जिस समय उन्होंने लिखना शुरू किया। उस समय छायावादी कवियों का बहुत जोर था। लेकिन इसमें से कोई भी कवि आदर्श के रूप में उनके सामने नहीं रहा। संस्कृत कवियों में कालिदास और बंगला में रवीन्द्रनाथ से वे अत्यन्त प्रभावित हुए। अंग्रेजी के स्वच्छंदतावादी कवियों ने भी उन्हें आकृष्ट किया। उन्होंने तारसप्तक के वक्तव्य में कहा है—

“मुझ पर किन-किन कवियों का प्रभाव पड़ा है यह भी एक प्रश्न है। किसी का नहीं। पुराने कवि मैंने कम पढ़े, नये कवि जो मैंने पढ़े मुझे जंचे नहीं। मैंने जब लिखना शुरू किया। तब अगर श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री सियारामशरण गुप्त को छोड़ दें तो छायावादी कवियों की धूम थी। 'निराला', 'प्रसाद' और 'पंत' फैशन में थे। ये तीनों ही बड़े कवि मुझे लकीरों में अच्छे लगते थे। किसी एक की भी एक कविता नहीं भायी, तो उनका प्रभाव क्या पड़ा। अंग्रेजी कवियों में मैंने वर्ड्सवर्थ पढ़ा था और ब्राउनिंग विस्तार से। बहुत अच्छे मुझे लगते थे दोनों.....भारतीय कवियों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर मेरे लिए एक बड़े अरसे तक बंद रहे। जेल में मैंने बंगला सीखी और कविता ग्रन्थ गुरुदेव के प्रायः सभी पढ़ डाले। उनका बड़ा असर पड़ा।”

इससे स्पष्ट है कि उनकी काव्य दृष्टि किसी भी कवि से विशेष प्रभावित नहीं हुई। उन्होंने अपनी रचना प्रक्रिया और काव्यानुभव के भीतर से अपने साहित्यिक विचार और सिद्धांत विकसित किए। 'कवि से' नामक एक कविता में उन्होंने अपने साहित्यिक विचार प्रकट किए हैं।

“जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख ।”

इससे स्पष्ट है कि मिश्र जी ने अपने काव्य में सामाजिकता और शिल्प में सादगी को स्वीकार किया। उनकी यह काव्य दृष्टि आज भी उनकी कविताओं में मिलती है।

मिश्र जी पर रवीन्द्र नाथ टैगोर का बहुत असर पड़ा। सन् 1937 में उन्होंने 'रवीन्द्रनाथ से' नामक कविता लिखी। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी कविताएँ उन्होंने रवीन्द्रनाथ के प्रभाव में लिखीं। लेकिन रवीन्द्रनाथ के काव्य में जो रहस्यवादी स्वर मिलता है, उसका मिश्र जी की काव्य-चेतना पर प्रभाव नहीं पड़ा।

मिश्र जी गाँधी जी से सबसे अधिक प्रभावित हुए। उन्होंने कविता और कार्य क्षेत्र में गाँधी दर्शन को पूरी तरह से अपनाया, फलतः उनकी ख्याति एक गाँधीवादी कवि के रूप में है। वर्तमान जीवन में विसंगतियों से गुजरते हुए गाँधीवादी आस्था के कारण उनका स्वर कभी निराशा से बोझिल नहीं हुआ। मिश्र जी ने विभिन्न विषयों पर कविताएँ लिखी हैं। पर इन सभी कविताओं का मूल स्वर गाँधीवादी प्रभाव से युक्त है। उनका खंडकाव्य 'कालजयी' भी गाँधी दर्शन के प्रति उनके अटूट विश्वास और आस्था का परिचायक है।

कृतित्व

मिश्र ने विद्यार्थी काल से ही काव्य रचना आरम्भ कर दी थी। सन् 1939-40 तक उन्होंने बहुत-सी कविताएँ लिख डाली थीं और पत्र-पत्रिकाओं तथा कवि-सम्मेलनों के माध्यम से चर्चा के विषय बन चुके थे। सन् 1951 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ। इसमें मिश्र जी की कई कविताएँ छपीं और चर्चित हुई।

'दूसरा सप्तक' की रचनाओं के बाद उनके अनेक काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—गीतफरोश, चकित है दुख, अंधेरी कविताएँ, बनी हुई रस्सी, खुशबू के शिलालेख, गाँधी पंचशती, परिवर्तन जिये, त्रिकाल संध्या, इदं न मम्, कालजयी आदि।

'गीतफरोश' मिश्र जी का प्रथम काव्य संकलन है। इसकी अधिकांश कविताएँ प्रकृति के रूप वर्णन से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिकता और राष्ट्रीय भावना से युक्त कविताएँ भी हैं। 'गीतफरोश' इस संकलन की प्रतिनिधि कविता है। इस संकलन से पहले सन् 1951 में 'प्रतीक' नामक पत्रिका में प्रकाशित यह कविता नए भावबोध आरंभिक हिंदी कविताओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इस कविता की पृष्ठभूमि के विषय में स्वयं कवि का कहना है—“गीतफरोश' शीर्षक हँसाने वाली कविता मैंने बड़ी तकलीफ में लिखी थी। मैं पैसे को कोई महत्त्व नहीं देता लेकिन पैसा बीच-बीच में अपना महत्त्व स्वयं प्रतिष्ठित करा लेता है। मुझे अपनी बहन की शादी करनी थी। पैसा मेरे पास था नहीं, तो मैंने कलकत्ते में बन रही फिल्म 'स्वयं-सिद्धा' के गीत लिखे। गीत अच्छे लिखे गए। लेकिन मुझे इस बात का दुख था कि मैंने पैसे लेकर गीत लिखे। मैं कुछ लिखूँ। इसका पैसा मिल जाए, यह अलग बात है, लेकिन कोई मुझसे कहे कि इतने पैसे देता हूँ तुम गीत लिख दो—यह स्थिति मुझे बहुत नापसंद है। क्योंकि मैं ऐसा मानता हूँ कि आदमी की जो साधना का विषय है वह इसकी जीविका का विषय नहीं होना चाहिए। फिर कविता तो अपनी इच्छा से लिखी जाने वाली चीज है।”

इस तकलीफदेह पृष्ठभूमि में लिखी गई 'गीतफरोश' कविता कविकर्म के प्रति समाज और आजकल के कवि के बदलते हुए दृष्टिकोण को उजागर करती है। व्यंग्य के साथ-साथ इसमें वस्तु-स्थिति का मार्मिक निरूपण भी है। 'चकित है दुख' की कविताओं में उनकी आस्था और जिजीविषा व्यक्त हुई है। 'अंधेरी कविताएँ' में दुख के अंधकार की कविताएँ नहीं हैं। बल्कि दुख और मृत्यु के प्रति अपनी ईमानदार स्वीकृति से उत्पन्न आशा और उल्लास की कविताएँ हैं। 'गाँधी पंचशती' की कविताओं में मिश्र जी ने गाँधी जी को अपनी मार्मिक श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं। सन् 1971 में उनका 'बुनी हुई रस्सी' काव्य संकलन प्रकाशित हुआ। चिंतन और शिल्प की प्रौढ़ता इनकी कविताओं की मुख्य विशेषता है। इस काव्यकृति को सन् 1972 में साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कृत किया गया था। 'खुशबू के शिलालेख' नामक संग्रह की अधिकांश रचनाएँ छोटी और प्रतीक बहुला हैं। इनके अतिरिक्त उनके अन्य काव्य-संग्रह भी अपनी विशिष्टताओं के कारण चर्चित हुए हैं।

काव्य-सौष्ठव

भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएँ भाव और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से बहुत अधिक प्रभावशाली हैं। इन कविताओं में उन्होंने अपनी अनुभूतियों को बहुत सरल शब्दों में व्यक्त किया है। उनकी कविता का भाव पक्ष सामाजिक भाव बोध, संवेदनशीलता, आत्मीयता, सहजता आदि जिन विशिष्टताओं से युक्त है, वे इस प्रकार हैं—

भावपक्ष

- (1) **सामाजिक भाव-बोध**—मिश्र जी की कविता व्यक्तिवादी कविता नहीं है, वह सामाजिक भाव-बोध से संपन्न है। मिश्र जी ने अपने काव्य में सामान्य जन-जीवन के विषम संघर्ष की उपेक्षा नहीं की, वरन् सामाजिक अन्याय, शोषण, अभाव आदि का वर्णन किया और इनके विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा दी। वे अपनी कविताओं के सारे विषय जीवन और समाज से ही उठाते रहे। लेकिन उन्होंने अपनी कविताओं को जीवन से जोड़कर भी सरस और सुन्दर बनाए रखा है।
- (2) **संवेदनशीलता**—भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं की एक अन्य विशेषता है—संवेदनशीलता। उनकी प्रसिद्ध कविताएँ जैसे—‘सतपुड़ा के जंगल’, ‘घर की याद’, ‘आशा-गीत’ आदि गहरी संवेदनशीलता के परिचायक हैं। उनके काव्य में अनुभूति और संवेदना की प्रधानता है। चिंतन, दर्शन आदि की बोझिलता उसमें नहीं हैं। अगर चिंतन के तत्त्व आए भी हैं तो वे उनकी संवेदनशीलता में ढलकर ही प्रकट हुए हैं।
- (3) **आत्मीयता**—मिश्र जी की कविताओं में आत्मीयता का गुण भी मिलता है। वे अक्सर अपने पाठक को सम्बोधित करते हैं या फिर प्रश्न पूछते हैं। सम्बोधित करते समय वे अक्सर पाठक को आत्मीयता के साथ समझाते हैं और कभी प्रश्न के द्वारा मानो उसे फटकारते हैं। उनके काव्य की यह आत्मीयता पाठक को उनके साथ जोड़े रखती है।
- (4) **आस्तिकता और आस्था**—मिश्र जी आस्तिक और आस्थावादी कवि हैं। हालाँकि वे ईश्वर पर विश्वास नहीं करते। लेकिन मानव-मूल्यों के प्रति उनकी आस्तिकता और आस्था उनकी कविताओं में व्यक्त हुई है।
- (5) **यथार्थ-बोध**—भवानी प्रसाद मिश्र ने जीवन के सहज और यथार्थ रूप की अभिव्यक्ति अपनी कविताओं में की है। लेकिन उनका यथार्थ-बोध केवल जीवन की कटुता, निराशा और विषमता का चित्रण नहीं करता। वरन् उनके यथार्थ-बोध के पीछे मानवता की विजय और सुखपूर्ण भविष्य की आशा छिपी हुई है और इसका कारण है—उनकी गाँधीवाद में आस्था। गाँधीवादी आस्था के कारण ही उनके यथार्थ बोध में निराशा का स्वर नहीं मिलता।
- (6) **प्रकृति-चित्रण**—मिश्र जी के काव्य में प्रकृति के सहज, मोहक और यथार्थ रूप का चित्रण मिलता है। उनके प्रकृति चित्रण छायावादी सौंदर्य चित्रणों से भिन्न हैं। उनकी कविताओं में सतपुड़ा, विन्ध्य, रेवा

और नर्मदा आदि के अनेक चित्र मिलते हैं। 'सतपुड़ा के जंगल' नामक उनकी कविता में प्रकृति के प्रति उनकी संवेदनशील अनुभूतियाँ इस प्रकार व्यक्त हुई हैं—

“सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से,
उंधते अनमने जंगल।”

यहाँ जंगल निर्जीव न रहकर सजीव, सप्राण जीवन का प्रतिरूप बन गया है। जंगल के विभिन्न अवयव जीवन और जगत की विभिन्न स्थितियों को प्रतिबिंबित करते हैं।

- (7) **सहजता**—सहजता मिश्र जी के काव्य के सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी कविताओं में साधारण जीवन के सहज-साधारण अनुभव व्यक्त हुए हैं। उन्होंने जीवन के सहज रूप को अपनी दृष्टि से देखा और अपने ढंग से उसकी सहज, अकृत्रिम अभिव्यक्ति की। लेकिन उनकी कविता सहज होते हुए भी पूर्णतः अर्थपूर्ण है, जिसके कारण उनकी काव्य-पंक्तियाँ सूक्ति या सूत्रवाक्य का रूप धारण कर लेती हैं। इस प्रकार की सारी काव्य-पंक्तियाँ जीवन की गम्भीर स्थितियों को व्यक्त करती हैं।

शिल्प पक्ष

भवानीप्रसाद की मिश्र की भाषा-शैली अत्यन्त सहज और बोलचाल की भाषा के निकट है। 'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में उन्होंने अपनी भाषा-शैली के विषय में लिखा है कि—

“वर्ड्सवर्थ की बात एक मुझे बहुत पटी कि 'कविता की भाषा यथासंभव बोलचाल के करीब हो।'तो मैंने जाने-अनजाने कविता की भाषा सहज रखी...। बहुत मामूली रोज़मर्रा के सुख-दुख मैंने इनमें कहे हैं, जिनका एक शब्द भी किसी को समझाना नहीं पड़ता।”

मिश्र जी की इस सहज सरल भाषा की सपाटबयानी में भी अद्भुत सौंदर्य है। इसका कारण यह है कि उनके अनुभवों में मौलिकता और ईमानदारी है। अतः उनकी सीधी-सपाट भाषा में भी आकर्षण और ताजगी आ गई है। हिन्दी काव्य-भाषा को मिश्र जी की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने बोलचाल की भाषा को साहित्यिक भाषा और काव्य भाषा का दर्जा प्रदान किया। उनकी कविता को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि जैसे कोई मित्र हमसे बातचीत कर रहा हो, अर्थात् कवि और पाठक के बीच कोई औपचारिकता या दूरी नहीं लगती है।

उनकी काव्य भाषा में यह विशेषता उनके शब्द-चयन से आई है। उन्होंने तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। उनके अधिकांश तत्सम शब्द भी वे हैं जो प्रचलित हैं और हिन्दी में अपना लिए गए हैं। लेकिन वे प्रचलित शब्द का भी ऐसी ठीक जगह प्रयोग करते हैं कि शब्द अपने अर्थ को बहुत ही तीखेपन से उजागर करता है।

तत्सम और तद्भव शब्दों के साथ ही उन्होंने ग्राम्य तथा प्रांतीय शब्दों का प्रयोग भी किया है। इस तरह के शब्दों ने उनकी भाषा को एक नयी शक्ति और ताजगी दी है, साथ ही इनसे कविताओं में लोकभाषा की लय और सोंधापन आ गया है।

मिश्र जी ने अधिकतर छोटी-छोटी कविताएँ लिखी हैं। छोटे से छंद की दो-दो पंक्तियों के बाद वे तुक बदल देते हैं। इससे भाषा में लय और गति आ गई है। इन्हीं छोटे छंदों में से छोटी वस्तु और बड़ी से बड़ी बात का भी बहुत सुन्दर और लयात्मक वर्णन करते हैं।

मिश्र जी की काव्य भाषा में बिंबात्मक और प्रतीकात्मक क्षमता भी है। उनके बिंब और प्रतीक भी बहुत स्पष्ट और सहज हैं। उनमें कहीं भी जटिलता या बोझिलता नहीं मिलती। लाक्षणिक-अलंकारिक तत्सम काव्य शैली को उन्होंने प्रायः कहीं नहीं अपनाया है। वस्तुतः वे ठीक उसी प्रकार लिखते हैं जिस प्रकार हम रोजमर्रा के जीवन में बोलते हैं। अभिव्यक्ति की सहजता, आत्मीयता और कलात्मकता उनकी काव्य शैली की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अनुभूति और अभिव्यक्ति की इन अप्रतिम विशेषताओं ने मिश्र जी को आधुनिक हिंदी कवियों में एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है।

प्रतिपाद्य : गीतफरोश

‘गीतफरोश’ कविता सन् 1951 में सबसे पहले ‘प्रतीक पत्रिका’ में छपी। बाद में इसे उन्होंने अपने ‘काव्य संग्रह’ में संकलित कर लिया। यह प्रयोगशील दौर के आरम्भ की रचना है, जिसमें बदलते समाज और स्वयं कवि के बदलते हुए दृष्टिकोण को व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत कविता ‘गीतफरोश’ में कवि कहता है कि मैं गीत बेचता हूँ और ग्राहक की इच्छा के अनुसार तरह-तरह के सभी किस्म के गीत बेचता हूँ। जैसे एक सेल्समैन अपनी वस्तु का विज्ञापन देता है और ग्राहक को लुभाता है ठीक वैसे ही कवि अपने गीत की प्रशंसा करते हुए और ग्राहक को लुभाते हुए कहता है कि पहले आप गीत देख लें, बाद में दाम बता दूँगा। ये गीत निरर्थक नहीं हैं, इनकी उपयोगिता या लाभ भी बताए जा सकते हैं कि ये किस-किस काम में आते हैं। कवि अपने गीतों की उपयोगिता बताते हुए कहता है कि इस गीत से सख्त सिरदर्द दूर हो सकता है- और अपने (प्रेमी) प्रिय को भी अपने पास बुलाया जा सकता है।

कवि अत्यंत ही सहजता से स्वीकार करता है-आरंभ में मुझे गीत बेचते हुए शर्म आई लेकिन बाद में यह समझ आई कि लोग अपने सुख के लिए अपना ईमान बेचते हैं तो मैं गीत क्यों नहीं बेच सकता। मुझे हैरान होने की जरूरत नहीं है। इसलिए सोच समझकर मैंने अपनी लेखनी की स्वतंत्रता को कुछ पैसों के लिए बेचना आरंभ कर दिया।

अपने गीतों की विविधता के विषय में कवि कहता है कि यह गीत सुबह का है इसमें जाकर आप देख सकते हैं। इस कविता में कवि ने हर प्रकार की मनःस्थितियों का वर्णन किया है। वह व्यंग्यात्मक लहजे में कहता है कि यह गीत पहाड़ों पर चढ़ा सकता है, आप जितना आगे बढ़ना चाहो बढ़ा सकता है। इसके प्रभाव से आप भूख-प्यास, दुःख बिमारी सब भूल सकते हैं।

इस प्रकार कवि बहुत ही अनुभवी और व्यावसायिक लहजे में अपने ग्राहकों से यह भी कहता है कि यदि ये गीत पसंद न हो तो मेरे पास कलम और दवात है, आपको जैसे गीत चाहिए लिख दूँगा।

स्पष्ट है कि कवि ने बहुत ही सरलता और सहजता के साथ अपनी विवशता को व्यंग्यात्मक लहजे में दिखाने की कोशिश की है। कवि भी समाज का एक हिस्सा है और समाज में हो रहे परिवर्तनों का प्रभाव

उस पर पड़ना वाज़िब है। जीवन जीने के लिए जिंदा रहना जरूरी है और जिंदा रहने के लिए पैसा भी जरूरी है। भवानी प्रसाद मिश्र ने बहुत ही मार्मिक तरीके से कवियों की विवशता को समझाने का प्रयत्न किया है और समाज पर भी एक करारा व्यंग्य किया है कि यह समाज एक कवि को भी अपने गीतों को बेचने पर विवश कर देता है, अपनी जरूरतों के आगे घर कर कवि को अपनी लेखनी के साथ समझौता करना पड़ता है- क्योंकि उसके गीत तभी बिकेंगे जब उसके पास ग्राहक होंगे। कवि अपने गीत ग्राहकों को खुश करने के लिए लिखता है-ताकि उसकी दुकान बंद ना हो, कवि को इस मानसिक स्थिति में पहुँचाने वाला यह भौतिकवादी समाज ही है।

व्याख्या भाग

1. जी हाँ हुज़ूर.....मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ।

शब्दार्थ : फरोश = बेचने वाला। पस्ती = हार, थकावट। मसान = श्मशान। भुवाली = एक पहाड़ी स्थान जहाँ तपेदिक का इलाज कराने लोग जाते हैं। भाये = अच्छा लगना। इल्मी = ज्ञानी वाली, इल्म वाले।

प्रसंग : 'गीतफरोश' कविता भवानीप्रसाद मिश्र द्वारा रचित उनके पहले काव्य-संग्रह में संकलित है। मिश्र जी की यह कविता प्रयोगशील कविता के आरंभिक दौर की बहुत ही प्रसिद्ध कविता है। इस कविता का केन्द्र बिंदु कवि द्वारा कविता को बेचने की विवशता है। और कवि की यह विवशता बदलते भौतिकवाद समाज की देन है।

व्याख्या : कवि कहता है कि मैं 'गीत बेचता हूँ' और ग्राहक (पाठक) की मर्जी के अनुसार तरह-तरह के सभी किस्म के गीत बेचता हूँ। वह एकदम शुद्ध व्यावसायिक ढंग से कहता है कि पहले गीत देख लें, बाद में कीमत बता दूँगा। ये गीत अर्थहीन नहीं है, ये गीत बहुत काम के हैं। कवि ने सभी तरह की संवेदनाओं (emotions) से सम्बन्धित गीत लिखे हैं। कवि कहता है कि यह गीत सख्त सिरदर्द को दूर कर देता है और इस गीत में इतनी शक्ति है कि प्रिय को भी पास बुला देता है। अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि आरम्भ में जब उसने गीत बेचना शुरू किया तो उसे शर्म आई लेकिन बाद में बुद्धि आ गई, वह समझ गया कि लोग अपने भौतिक सुख के लिए जब अपना ईमान तक बेच सकते हैं तो मैं गीत क्यों नहीं बेच सकता। और अन्त में मैंने अपनी लेखनी की स्वतंत्रता की तिलाजलि दे दी। कवि कहता है कि मैंने हर विषय पर गीत लिखे हैं, मेरे गीत सुबह के हैं, गजब के हैं। मैंने हर प्रकार की मनःस्थिति और परिस्थिति को आधार बनाया है अपने गीतों के लिए। वह व्यंग्यात्मक शैली में कहता है कि यह गीत आपको पहाड़ पर भी चढ़ा सकता है और दूसरा गीत ऐसा है जिसे जितना आगे बढ़ाना चाहो बढ़ सकता है। यह गीत बहुत ही प्रभावशाली है। यह गीत भुवाली नामक तपेदिक के अस्तपाल की हवा जैसा असरदार है। यह गीत तपेदिक की दवा के समान है। इस प्रकार यह कवि सभी प्रकार के गीत की रचना कर सकता है और बेच सकता है।

कवि अपने-अपने पाठकों को शुद्ध सेल्समैन की तरह कहता है कि आपलोगों को जैसा पसन्द होगा हम वैसा ही गीत लिखेंगे, आप जैसा गीत सुनना चाहेंगे हम वैसा ही गायेंगे। मेरे पास ऐसे भी गीत हैं जो

अमर होनेवाले भी हैं और ऐसे भी हैं जिनका प्रभाव तुरंत समाप्त हो जाता है। यहाँ कवि यह कहना चाहता है कि कविता लिखना उसका व्यवसाय है जो उसके जीविका का साधन है, जिसको चलाने के लिए उसने समझौतावादी दृष्टिकोण अपना लिया है। कवि स्पष्ट कर देता है कि उसके पास कलम और दवात है और वह ग्राहक (पाठक) के पसंदानुसार कविता लिखकर फेरीवाले की तरह अपनी कविता को बेच सकता है।

कवि के अनुसार उसने जन्म और मरण दोनों ही अवसरों के लिए गीत लिखे हैं। कभी विजयगीत लिखे हैं और कभी शरण गीत। कोई गीत रेशम का है, कोई खादी का, कोई पित्त का और इल्म वाला गीत भी है। और ये सभी गीत कवि के जीवन की विडंबना और विवशता को उजागर करते हैं।

कवि का स्वर व्यंग्यात्मक होते हुए भी वस्तु स्थिति की गंभीरता की ओर संकेत करता है। असल में कवि समाज में हो रहे बदलाव पर व्यंग्य करता है, यह बताने की कोशिश करता है कि यह समाज किस तरह से कवि को कविता बेचने पर विवश करता है, किस तरह कवि की स्वतंत्रता को छिन लेना है। कभी-कभी कवि के गीत रुठ भी जाते हैं अर्थात् कवि की आत्मग्लानि होती है लेकिन फिर वह स्वयं को समझा लेता है कि उसके पास गीत बेचने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। और यह लाचारी और विवशता इस भौतिकवादी समाज की ही देन है।

विशेष : 1. भाषा, सहज, सरल और आत्मीयता से परिपूरण है।

2. भाषा सरल होते हुए भी भावाभिव्यक्ति में सशक्त है।

3. तुकबंदी से कविता में व्यंग्य बहुत ही तीव्र हो गया है।

4. समाज के कारण साहित्य में जो परिवर्तन आते जा रहे हैं उसकी भी सूचना है।

5. कवि भी समाज का ही एक हिस्सा है और कवि होने के साथ-साथ उसकी और भी भूमिका और जिम्मेदारियाँ हैं जिसके निर्वाह के लिए उसे भी पैसों की जरूरत होती है और उसकी यही विवशता उसकी लेखनी और विचारों की स्वतंत्रता को छिन लेती है। यही केन्द्रीय भाव है इस कविता की।